www.sukhiparivar.com

₹25

समृद्ध सुखी परिवार

जून 2011

घर को स्वर्ग बनाती है नारी

आनंद तो अपने ही अंदर है!

परिवार है जीवन की प्रयोगशाला

जरूरी है गर्मी में लू से बचना

आध्यात्मिक गौरव की प्रतीक है भारतीय संस्कृति!

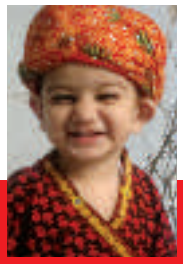

भावी बच्चे कैसे बनें अच्छे?

सांगलपुर के कष्ट हरने वाले हनुमानजी

गुरुदेव टैगोर का शिक्षा दर्शन

VASU CREATION

B-4/1626,RAI BAHADUR ROAD,LUDHIANA - 141 008

Phone No. 0161-2740154, 98142-62392

Mfrs. of PREMIUM RANGE OF GIRLS, LADIES & GENTS NIGHT WEARS,

-: SPECIALISTS IN :-

❖LONG KURTA ❖3PC SET ❖MATERNITY WEAR ❖JIM WEAR ❖CAPRI SET & SLEX SUIT.

समृद्ध सुखी परिवार

सुखी और समृद्ध परिवार का मुखपत्र

वर्ष : 2 अंक : 5
जून 2011, मूल्य : 25 रु.

मार्गदर्शक
गणि राजेन्द्र विजय

परामर्शक
मनीष जैन
अध्यक्ष: सुखी परिवार फाउंडेशन

संपादक
ललित गर्ग
(9811051133)

लेआउट आर्टिस्ट
एम एस बोरा
(9910406059)

संपादक मंडल
दीपक रथ, मितेश जैन, चेतन आर. जैन,
दीपक जैन-भायंदर, निकेश जैन,
श्रेणिक एम. जैन-मुंबई,
चंदू वी. सोलंकी-बैंगलोर,
राजू वी. देसाई-अहमदाबाद,
मुकेश अग्रवाल-दिल्ली

विज्ञापन प्रतिनिधि
जसवंत परमार

: शुल्क :
वार्षिक: 300 रु.
दस वर्षीय: 2100 रु.
पंद्रह वर्षीय: 3100 रु.

कार्यालय
ई-253, सरस्वती कुंज अर्पाटमेंट
25 आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज
दिल्ली-110092
फोन: 011-22727486, 43057823
E-mail: lalitgarg11@gmail.com

क्रोध विष और क्षमा अमृत है

मानव लौकिक सुख-समृद्धि और सशक्तीकरण के लिये, माता-पिता का आभारी होता है एवं अलौकिक आध्यात्मिक प्रेरणा के लिये गुरु का कृतज्ञ होता है। परन्तु क्षमा एक ऐसी चिन्तामणि है जिससे आत्मा को सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। संसार को पार करने के लिए धर्मरूपी नौका मिल जाती है।

-गणि राजेन्द्र विजय

6	धर्म, पाप और पुण्य	वल्लभ उवाच
6	हर नाकामी से सबक लेना जरूरी है	बिल गेट्स
8	हर समस्या को हल कर सकता है प्यार	साईं बाबा
9	प्रार्थना का महत्व	डॉ. कल्याणमल लोढ़ा
9	संगीत और जीवन	कैलाश खेर
10	उपनिषदों में सुखी जीवन के सूत्र	डॉ. के. के. अग्रवाल
10	शांति का रास्ता	सुरेश सिंह
11	बहुत अच्छे मैनेजमेंट गुरु है गणपति	प्रशांत जैन
12	हनुमानजी अपना बल क्यों भूलें?	हिमांशु शेखर
13	गीता का ज्ञान और सुखी पारिवारिक जीवन	ओमप्रकाश पोद्दार
14	एकल परिवार : बुजुर्गों पर अत्याचार	डॉ. आनंदप्रकाश त्रिपाठी
15	मंत्र की शक्ति	डॉ. हरिकृष्ण देवसरे
16	मन के भीतर है धर्म	डॉ. सुश्री शरद सिंह
17	कैसा होना चाहिए हंसना	विपिन जैन
18	आध्यात्मिक गौरव की प्रतीक है भारतीय संस्कृति	राजीव मिश्र
19	आत्मदर्शन है स्वयं को देखना	आचार्य श्री महाश्रमण
20	भावी बच्चे कैसे बनें अच्छे?	आर. जे. मौर्य
21	बेहद जरूरी होने पर ही कहें सख्त बातें	तिरुवल्लुवर
22	जरूरी है गर्मी में लू से बचना	धर्मेन्द्र डाकलिया
23	पृथ्वी-पूजा है रंगोली	शुभदा पांडेय
23	न्यूमरोलॉजी में नंबर 5 का महत्व	नीता बोकाड़िया
26	कैसे बिताएं स्वस्थ जीवन?	आचार्य श्री विद्यानंद मुनि
27	छवि बनाना हमारे हाथ में है	काजोल
28	बूढ़े माता-पिता से मत छीनिये उनके पोते-पोतियों का संसार	प्रेमनारायण गुप्ता
29	मानसिक शांति के नुस्खे	मंजुला जैन
30	मनुष्य जन्म को सार्थक करें	आचार्य विजय वीरेन्द्र सूरि
32	घर को स्वर्ग बनाती है नारी	साध्वी कल्परसाश्री
33	गुरुदेव टैगोर का शिक्षा-दर्शन	पी. डी. सिंह
34	भगवान को समर्पित हो हमारा हर कर्म	श्री रमेशभाई ओझा
35	सांगलपुर के कष्ट हरने वाले हनुमानजी	संगीता शुक्ला
35	गांव में जनतंत्र	अरुणा राय
36	अहिंसा-धर्म है वृक्ष की तरह	आचार्य श्री विद्यासागर
37	सुख-समृद्धि और वैभव देता है पीपल का पूजन	मनोजकुमार पोखरियाल
37	एक भी रिश्ता महफूज नहीं	जयंती दत्ता
38	गतिशीलता का मर्म	डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी
38	मोक्षदायिनी गंगा	मृदुला सिन्हा
39	आनंद तो अपने ही अंदर है	नन्दकुमार सोमानी
40	Attitude helps to uplift our lives	Gani Rajendra Vijay
40	The flower and its fragrance	Sri Chinmoy
41	Change your direction to change your life	Acharya Mahaprajna
41	The ways of karma	Sri Sri Ravi Shankar
42	नीम और मधुमेह	सुरेन्द्र अंचल
42	आत्मबल से आत्मनियंत्रण	मृदुला गर्ग
44	न्यायपालिका का संयमित व्यवहार जरूरी	मुरली कांठेड़
45	ईष्टकृपा से पायें सुख-शांति और समृद्धि	पं. वागाराम परिहार
45	खोने का दर्द	उमा पाठक
46	परिवार है जीवन की प्रयोगशाला	मनीष जैन

Published, Printed, Edited and owned by Lalit Garg from E-253, Saraswati Kunj Appartment, 25 I.P. Extn. Patparganj, Delhi-110092. Printed at : Bookman Printers, A-121, Vikas Marg, Shakarpur, Delhi-110092.
Editor : Lalit Garg

जैन संतों/साध्वियों के विहार (यानी पदयात्रा) के संबंध में विचार रखना चाहता हूं कि इस युग में अब इस प्रकार के विहार (यात्रा) का औचित्य नहीं है क्योंकि यदा-कदा दुर्घटनाएं होती हैं और गांव-गांव में प्रवचन की भी प्रणाली नहीं है। पशु वाहन के माध्यम से यात्रा का विधान कभी जैनधर्म में निसार्थक रहा था ताकि धर्म की प्रभावना हो और प्राणीमात्र को सद्विचारों के प्रवाह से जैन धर्म का प्रचार और अहिंसा के सिद्धांत से प्रभावित किया जाए। मगर आजकल प्रत्येक साधु-साध्वियों को व्हील-चेयर पर चलता हुआ देखते हैं और साथ में सामान के लिए भी वाहन साथ चलता है। मनुष्य द्वारा खींचने वाली व्हील-चेयर से अहिंसा की मर्यादा धूमिल हो रही है। देश में विभिन्न समुदाय के व्यक्ति निवास करते हैं और वह लोग इस प्रकार की जा रही धर्म गुरुओं की इस पद यात्रा की आलोचना करते हैं जिससे शर्मसार होना पड़ता है। इसके अलावा मार्ग में उनके विश्राम स्थल की समुचित व्यवस्था और गोचरी की व्यवस्था लेकर जाना इत्यादि व्यवस्था भी कष्टप्रद ही रहती है। अत: इस प्रसंग को विशिष्ट धर्मगुरुओं के चिंतन-मनन हेतु, आपकी समाज सुधारक पत्रिका विचारार्थ रखें।

–हीरालाल जैन
296, हिम्मत नगर, टोंक रोड
जयपुर-302018 (राजस्थान)

समृद्ध सुखी परिवार पत्रिका का सामाजिक एवं आध्यात्मिक जागरूकता के संदेश से ओतप्रोत मार्च-2011 का प्रेरणादायी अंक प्राप्त हुआ। आपने पत्रकारिता को नये आयाम दिये हैं जो कि अनुकरणीय प्रयास है। 'समृद्ध सुखी परिवार' एक अत्यंत ही प्रेरणादायी, सर्वश्रेष्ठ, समर्पित एवं आंदोलित कर देने वाली पत्रिका है। 'समृद्ध सुखी परिवार' के सभी महान संतों, विचारकों एवं लेखकों के प्रति हम अपनी श्रद्धा एवं सम्मान करते हैं। विशेषकर मार्गदर्शक गणि राजेन्द्र विजयजी के शिक्षा, अहिंसा और पर्यावरण के विचारों तथा संकल्पित कार्यों को एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालय के रूप में साकार होते देखकर मुझे मानवजाति की सेवा करने की अत्यधिक ऊर्जा प्राप्त हुई है। धरती के प्रत्येक परिवार को समृद्ध-सुखी बनाकर ही इस धरती पर आध्यात्मिक समाज की स्थापना की जा सकती है।

–डॉ. जगदीश गांधी
संस्थापक-सिटी मोंटेसरी स्कूल
12, स्टेशन रोड, लखनऊ-226001

समृद्ध सुखी परिवार पत्रिका के पिछले चार अंक निरंतरता के साथ उपलब्ध हुए। पत्रिका की उपादेयता एवं गुणात्मक वैभव की जितनी प्रशंसा की जाये, कम है। मेरा पूरा परिवार ही नहीं अड़ोस-पड़ोस के लोग भी इसे पढ़ रहे हैं। सचमुच यह पारिवारिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अद्वितीय पत्रिका है। इसके संपादन के लिए आप बधाई के पात्र हैं। पत्रिका का साहित्यिक पक्ष और कलात्मक सौन्दर्य भी श्लाघनीय है।

पत्रिका के प्रकाशन में मुद्रण संबंधी छुटपुट त्रुटियों पर अतिरिक्ति ध्यान देने का आग्रह है।

–शिवशरण दुबे
दमदहा पुल के पास
कटनी मार्ग, बरही -483770 (म.प्र.)

अनेक धर्मों का अध्ययन कर मैं तो इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि सभी धर्मों का मूल स्थान एक ही है और एक ही स्थान पर अलग-अलग मार्गों से पहुंचना है फिर मनुष्य-मनुष्य के बीच यह दूरियां कैसी? हम इसे कम कर सके तो जीवन सार्थक होगा वरना पशु और हम में अंतर ही कितना रह जाएगा।

मैं एक बार फिर कहना चाहूंगा कि ऐसी पत्रिका की समाज को बेहद आवश्यकता है जबकि शिक्षा से नैतिकता और आदर्श की पुस्तकें गायब कर दी गई हैं। अंग्रेजी माध्यम में भी कोई सार्थक विषय नहीं रहा।

'समृद्ध सुखी परिवार' पत्रिका पाकर मुझे बेहद मानसिक शांति मिली है क्योंकि ऐसी पत्रिका की चाहत मेरे मन में बरसों बरस से थी। भारतीय समाज का जो हाल है, वह तो आप भी देख और महसूस कर ही रहे हैं।

–डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'
कथाकार/संपादक

समृद्ध सुखी परिवार पत्रिका हर माह प्राप्त हो रही है। हर बार पत्रिका के अंक में इतने सारे, सामाजिक सराकारों से संबंधित लगभग सभी विषयों पर स्तंभ तथा लेख देख कर दंग रह जाती हूं। सारे ही लेख दिलो-दिमाग पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। धर्म, अध्यात्म, संस्कार, संस्कृति, साहित्य, श्रृंगार... क्या-क्या गिनाऊं, आपकी तेज नजरों से कुछ भी तो छूटा नहीं।

एक वाक्य में कहा जाए तो एक ऐसी पत्रिका जो परिवार को ही नहीं, समाज और राष्ट्र को भी एक कड़ी में गूंथ कर मजबूत, समृद्ध और सुखी बना सकता है। संपादक मंडल तथा

समस्त सहयोगियों को बधाई व साधुवाद।

–मंगला रामचंद्रन
41डी/डी/एस-3, स्कीम-78, अरण्य नगर
इन्दौर-452010 (म.प्र.)

समृद्ध सुखी परिवार के कुशल सम्पादन के लिए बधाई। पिछले कुछ महीनों से पत्रिका मिल रही है। हर बार पत्रिका प्रगति/विकास के नए आयाम छू रही है, बाहरी और भीतरी साज-सज्जा से समृद्ध पत्रिका सामाजिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक और राजनीतिक मुद्दों को कुछ इस प्रकार उठा रही है, इस प्रकार समाधान प्रस्तुत कर रही कि पत्रिका को सम्पूर्ण पत्रिका दर्जा प्राप्त हो चुका है। अप्रैल मास का सम्पादकीय तो कमाल का है, असुरक्षा, भ्रष्टाचार, प्रदूषण की जड़ों को मिटा देने के लिए कोई चाणक्य पैदा नहीं होगा, आपको ही यह गरल पीकर समाज के व्यापक हित में अमृत की रक्षा करनी होगी। घुन लगी व्यवस्थाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने की आवश्यकता है। कई बार तो सोचना पड़ता है कि न्यायपलिका की ईमानदारी को कार्यपालिका और भ्रष्ट सरकार इसी प्रकार नोंचती रही तो सारा ही समाज और देश कैंसर ग्रस्त न हो जाए। आपका सम्पादकीय अनेक प्रश्नों को सही परिप्रेक्ष्य में उभारं कर सामने ला रहा है, आपकी यह कर्मठता, लगन और परोपकारी दृष्टि अवश्य ही रंग लाएगी। अच्छी, उपयोगी एवं पठनीय पत्रिका के लिये आपको एक बार फिर बधाई।

-डॉ. देवेन्द्र आर्य
वाणी सदन, बी-98, सूर्य नगर,
गाजियाबाद-201 011 (उ.प्र.)

इनके भी पत्र मिले–
राजीव नामदेव 'राना लिधौरी' (टीकमगढ़-म.प्र.), **ललित शर्मा** (झालावाड़-राजस्थान), **राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन'** (रायबरेली-उ.प्र.), **संतोषकुमार 'सोनकर'** (रायपुर-छ.ग.), **किरण बाला** (मंदसौर-म.प्र.), **डॉ. सुनीलकुमार अग्रवाल** (चंदौसी-उ.प्र.), **डॉ. विनोदकुमार शर्मा** (भिण्ड-म.प्र.)

नारी नये समाज का आधार बने

कई दिनों से कुछ महिलाओं के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान एवं हिम्मत का ज़िक्र आ रहा है। ऐसा तो कोई दिन नहीं जाता जब इनके साथ हुए सामाजिक अन्याय, अपमान, बलात्कार एवं जलाने की घटनाएं प्रकाशित नहीं हुई हों। परन्तु इन सबके बीच भी कुछ ऐसे व्यक्तित्व निखर कर सामने आते हैं जो तुलसीदास एवं मैथिलीशरण गुप्त की मान्यताओं को नकारते हुए महिला समाज को अबलापन से बाहर निकालकर गौरव प्रदान करते हैं। किरण बेदी, मेनका गांधी, चंदा कोचर, किरण मजूमदार शा, इन्द्रा नूई, मीरा नायर, बीना मजूमदार, मेधा पाटकर और लता मंगेश्कर ऐसे नाम हैं जो अपने-अपने योगदान के प्रतीक बन चुके हैं। और भी अनेक हैं, जिनको मीडिया ने प्रकाशित नहीं किया। इन नामों के अलावा कुछ नाम और हैं जैसे राष्ट्रपति प्रतिभादेवी सिंह पाटिल, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी, लोकसभा में प्रतिपक्ष की नेता सुषमा स्वराज, पीडीपी अध्यक्ष महबूबा मुफ्ती और फिलहाल देश के चार राज्यों में सत्तारूढ़ मुख्यमंत्री- जयललिता, ममता बनर्जी, मायावती और शीला दीक्षित, जो नारी होकर ही उच्चस्थ पदों को शोभित तो कर रही हैं, लेकिन इनसे पास नारी को अबला से सबला बनाने का कोई एजेंडा नजर नहीं आता। इन सब महिला नेताओं के सत्ता संभालने का अर्थ यह कतई नहीं है कि वे नारी समानता यानी स्त्रियों के प्रति न्यायपूर्ण समाज बनायेंगी, महिला होने के नाते वे महिलाओं को आगे बढ़ने की पक्षधर होंगी। लेकिन सार्वजनिक दायरे के शीर्ष पदों पर महिलाओं की बढ़ती उपस्थिति एक शुभ संकेत है और यह वर्तमान समय की जरूरत को पूरा भी करती है। बात सियासत की हो या व्यापार की, खेल की हो या सांस्कृतिक कलेवर की, साहित्य की हो या प्रशासनिक परिवेश की- हर तरफ महिलाओं ने सफलताओं को परचम फहरायें हैं, महिलाओं के पास निश्चित तौर पर अपनी व्यक्तिगत क्षमता, दक्षता और दूरदर्शिता के गुण रहे हैं, लेकिन मात्र यही उनकी कामयाबी की पर्याप्त वजह नहीं है। आजादी के आन्दोलन के समय से अब तक एक लंबा संघर्ष और आन्दोलन रहा है इन महिलाओं को बराबर का दर्जा देने के लिये। अब सफलता के पायदानों पर चढ़ते देखकर कुछ तो राहत महसूस होती है, लेकिन वह दिन देखना अभी बाकी है जब स्त्री-समाज का पर्याप्त विकास देखकर पुरुष वर्ग उसका अनुसरण करे।

सवाल किसी किरण, चन्दा, मीरा, मेनका, लता का नहीं, सवाल है औरत अगर ठान ले तो जीवन मूल्य बदल सकती है। क्योंकि समूची व्यवस्था परिवर्तन चाहती है। जबकि हम नई व्यवस्था की मांग के नाम पर पुरानी व्यवस्था के खिलाफ जंग की- एक नई संस्कृति पनपा रहे हैं। व्यवस्था अव्यवस्था से श्रेष्ठ होती है, पर व्यवस्था कभी आदर्श नहीं होती। आदर्श स्थिति वह है जहां व्यवस्था की आवश्यकता ही न पड़े।

एक नई किस्म की वाग्मिता पनपी है जो किन्हीं शाश्वत मूल्यों पर नहीं बल्कि भटकाव के कल्पित आदर्शों के आधार पर है। जिसमें सभी नायक बनना चाहते हैं, पात्र कोई नहीं। भला ऐसी सामाजिक व्यवस्था किसके हित में होगी?

सब अपना बना रहे हैं, सबका कुछ नहीं। और उन्माद की इस प्रक्रिया में एकता की संस्कृति का नाम सुनते ही हाथ बंदूक थामने को मचल उठते हैं। मनुष्यता क्रूर, अमानवीय और जहरीले मार्गों पर पहुंच गई है। बहस वे नहीं कर सकते, इसलिए बंदूक उठाते हैं। संवाद की संस्कृति के प्रति असहिष्णुता की यह चरम सीमा है। बन्दूक की संस्कृति की जगह संवाद की संस्कृति बने तो समाधान के दरवाजे खुल सकते हैं। दिल भी खुल सकते हैं। यही कारण है कि जनता महिलाओं के हाथ में सत्ता सौंप कर कुछ शाश्वत परिवर्तन की अपेक्षा करती है, वह चाहती है कि बन्दूक की संस्कृति पर विराम लगे, लेकिन विडम्बना यह है कि राजनीति का मुखौटा पहनते ही सत्ता के परिपार्श्व की महिलाओं का चरित्र ही बदल जाता है, उनके नारी सुलभ गुण औझिल हो जाते हैं, फिर भला उनसे क्या अपेक्षा की जाये?

नारी में सृजन की अद्भुत क्षमता है। उस क्षमता का उपयोग राजनीति को एक नई दिशा देने, अहिंसा की स्थापना, स्वस्थ समाज निर्माण में किया जाये तो वह सही अर्थ में विश्व की निर्मात्री और संरक्षिता होने का सार्थक गौरव प्राप्त कर सकती है। आज का क्षण महिलाओं के हाथ में है। इस समय भी अगर महिलाएं सोती रहीं, घड़ी का अलार्म सुनकर भी प्रमाद करती रहीं तो भी सूरज को तो उदित होना ही है। वह उगेगा और अपना आलोक बिखेरेगा। लेकिन इस आलोक से महिलाएं एक बार फिर वंचित रह जायेगी और यह वंचित रहना एक बड़ी त्रासदी का कारण बन सकता है। सुखी परिवार अभियान और उसके प्रणेता गणि राजेन्द्र विजय नारी जाति को इसी त्रासदी से उपरत करने के लिये प्रयासरत है। वे नारी जाति को विकास का सूत्र देते हुए कहते हैं -'विकास के लिये बदलाव एवं ठहराव दोनों जरूरी हैं। मौलिकता स्थिर रहे और उसके साथ युगीन परिवर्तन भी आते रहें, यही विकास का यथार्थ मार्ग है।'

महिलाएं इरादों को छोड़ कोशिश शुरू करें तो कामयाबी अवश्य मिलेगी। इसके लिये जरूरी है कि महिलाएं आजादी चाहें मगर संयम के साथ। स्वतंत्र चिन्तन का क्षितिज छूएं मगर प्रतिबद्धता के साथ। अपनी क्षमताओं का मूल्यांकन करें पर सही सोच के साथ। महिलाएं सीढ़ियों को जमीन के उस हिस्से पर रखकर ऊपर चढ़ना शुरू करें जो समतल एवं सुदृढ़ हो। यही सावधानी महिलाओं की सफलता का आधार बनेगी और यही निर्माण का क्षण शुभ शकुन देगा, इसी से परिवर्तन की शाश्वत फिजां का निर्माण होगा और यही सम्पूर्ण मानवता का उपकृत करने का माध्यम बनेगा।

नारी में सृजन की अद्भुत क्षमता है। उस क्षमता का उपयोग राजनीति को एक नई दिशा देने, अहिंसा की स्थापना, स्वस्थ समाज निर्माण में किया जाये तो वह सही अर्थ में विश्व की निर्मात्री और संरक्षिता होने का सार्थक गौरव प्राप्त कर सकती है।

वल्लभ उवाच

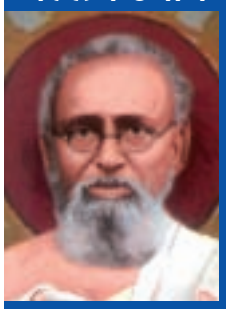

धर्म, पाप और पुण्य!

''हर जीव का अपना धर्म है!
शेर का जीवन, अपना जीवन है, गधा केवल परिश्रम देना जानता है, गाय दूध देकर पोषण करती है, वृक्ष अपना फल स्वयं नहीं खाते।
नदियां अपना पानी स्वयं नहीं पीतीं।
फूल अपनी सुगन्ध स्वयं नहीं लेते।
''परोपकाराय सतां विभूतय:''
जब प्रकृति का हर जीव, जड़ चेतन सभी का धर्म, केवल परोपकार ही है-तो फिर---------
क्या कारण है कि एक मानव ही, स्वार्थ और अपनी निरीहता के कारण, पूर्णरूप से हर वस्तु के लिये दूसरों का मोहताज है?
जो स्वयं मोहताज है, भिखारी है, वह सर्वेसर्वा हो ही कैसे सकता है?
इस 'अहम् भावना' को, इस मानव की असमर्थता को, सच्चा ज्ञान और वास्तविक बुद्धि के मार्गदर्शन के लिये ही-
धर्म को जीवन प्रधान बनाया गया है। परंतु वाह रे, मानव! कीट पतंग, पशु, पक्षी, वनस्पति, फूल फल, अपना धर्म निभा सकते हैं।
परंतु तू! इन सबका आश्रित होकर भी अपना धर्म नहीं निभा सकता। क्यों?

*****

''जो कुकृत्य है, वह पाप है! अपने स्वार्थ के लिये, अपने सुख के लिये, दूसरों को हेय समझ कर, अपना स्वार्थ सिद्ध करना, पाप कहलाता है।
बछड़े के मुंह का दूध छीन कर अपना पेट भरना पाप नहीं तो क्या?
शहद की मिठास का रसास्वादन करने के लिये, मधुमक्खियों का परिश्रम निचोड़ना, पाप नहीं तो क्या?
प्रकृति, मानव की हर आवश्यकता की पूर्ति स्वयं करती है।
गन्ने के खेत!, गन्ने का रस, नदियों का पानी, फलों से लदे ये वृक्ष, कपास के फूल-
ये सब क्या हैं?
प्रकृति की उपकार भावना!
फिर यह लालसा, यह लिप्सा, नवीनता की कामना और शारीरिक वासना के लिये सांसारिक प्रपंच क्यों?
नश्वर शरीर के लिये, ये आडम्बर क्यों? धन की लालसा में प्रकृति का व्यापार क्यों?
केवल-''लेना'' ही, मानव की भूख क्यों? ''देने'' की भावना का ह्रास मानव को, आज पतन की ओर गिरा रही है।

*****

''अपना धर्म पालन ही पुण्य कहलाता है।
पूजा-पाठ, ध्यान, कर्म, प्रभुसेवा, ईश्वरभक्ति, दान, दया कर्मों द्वारा पुण्य का प्रपंच रचने वालों को ध्यान रखना चाहिये, ये पुण्य कर्म साधान मात्र हैं, वास्तविक पुण्यार्जन नहीं------
प्राणीमात्र को अपने जैसा समझ कर प्राणीमात्र पर दया, उनकी आवश्यकताओं का अध्ययन कर, जीव सेवा करना ही वास्तविक पुण्य है।
एक श्रीमंत के घर नौकर चाकरों का उसके आश्रित रह कर सेवा करना और श्रीमंत का उनसे सेवा करवाना, अपने स्वार्थों के पालन हेतु वे अपने सुख के लिये दूसरों को पराधीन रखना पाप है, पुण्य नहीं।
वे आपकी सेवा करते हैं, आप उन्हें तनख्वाह देते हैं, उपकार नहीं करते।
भूखों को भोजन देते समय यदि यह विचार आ गया कि आप धर्म कर रहे हैं, या पुण्य कमा रहे हैं तो- वह पुण्य नहीं, आडम्बर कहलाएगा।
किसी भी कृत्य के पीछे भावना की परछाई,उस कृत्य को पुण्य या पाप में बदल देती है।
जीवमात्र का कल्याण पुण्य है।

हर नाकामी से सबक लेना जरूरी है

माइक्रोसॉफ्ट के अध्यक्ष बिल गेट्स का जन्म 28 अक्टूबर 1955 को अमेरिका के सिएटल में हुआ। फोर्ब्स की लिस्ट में उन्होंने इस साल का दुनिया का दूसरे नंबर का सबसे रईस शख्स चुना गया है। वह इस लिस्ट में बरसों तक टॉप पर रहे हैं। कम्प्यूटर को लोकप्रिय बनाने में उनका खास योगदान है। इसके अलावा, लेखन और दूसरों के भले के काम करने के लिए भी उन्हें जाना जाता है। वह अपनी संपत्ति का 51 फीसदी दान करने का ऐलान कर चुके हैं।

बिल गेट्स

- अगर आप किसी चीज को अच्छा नहीं बना सकते तो कम-से-कम उसे अच्छा दिखा तो सकते हैं।
- जिंदगी जैसी चाहो वैसी मिलती नहीं है, इस सचाई की आदत डाल लीजिए।
- कामयाबी पर खुशी मनाना अच्छा है, लेकिन नाकामी से सबक लेना और भी अच्छा है। यही आपको आगे बढ़ाता है।
- लोग हमेशा बदलाव से डरते हैं। इसकी वजह उनकी कम जानकारी है। जब तक जानकारी की कमी रहेगी, डर बना रहेगा।
- आपके सबसे असंतुष्ट ग्राहक ही आपके ज्ञान हासिल करने के मुख्य स्रोत हैं।
- अगर आप यह सोच रहे हो कि आपका टीचर बहुत ही कड़क है तो सोच लीजिए की जब आपका बॉस मिलेगा तो क्या होगा?
- यह कामयाबी भी अजीब चीज है। यह होशियार लोगों को भरोसा दिलाती है कि वे कभी नाकाम नहीं हो सकते।
- जैसे-जैसे हम अगली सदी की ओर नजरें दौड़ा रहे हैं, हम देख पा रहे हैं कि नेता वही कहलायेंगे, जो दूसरों को शक्ति व भरोसा दे पायेंगे।
- हमें लोगों के बर्ताव में बदलाव लाने के लिए काफी पैसा खर्च करना होगा।
- तकनीक सिर्फ एक जरिया है। आप अपने बच्चों को प्रोत्साहित करना चाहते हैं तो टीचर सबसे अहम हैं।
- दया और अच्छाई के पुराने विचारों को ये हृदयहीन मशीनें समाज से बाहर निकाल फेंकेंगे।

दिशाबोध

गणि राजेन्द्र विजय

क्रोध विष और क्षमा अमृत है

मानव लौकिक सुख-समृद्धि और सशक्तीकरण के लिये, माता-पिता का आभारी होता है एवं अलौकिक आध्यात्मिक प्रेरणा के लिये गुरु का कृतज्ञ होता है। परन्तु क्षमा एक ऐसी चिन्तामणि है जिससे आत्मा को सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है। संसार को पार करने के लिए धर्मरूपी नौका मिल जाती है। लक्ष्य पाने के लिये सर्वप्रथम भाव बनाना पड़ता है, संकल्प करना होता है अत: भावनाओं की जमीन पर सर्वप्रथम क्षमा का बीज-वपन करना है। क्रोध रूपी विभाव को हटा क्षमा रूप आत्म- स्वभाव को सक्रिय करना है। क्षमा धर्म सारे धर्मों के महल की नींव है, आधारशिला है। विशेष परिस्थितियों में जब क्रोध के कारण उपस्थित होने पर एवं दण्ड देने की सामर्थ्य होने पर भी क्षमा कर देना, सवोच्च मानवीय गुण है।

क्षमा कमजोर का नहीं, वीर का आभूषण है। शक्तिमान समर्थ मनुष्य ही क्षमाशील कहलाने का अधिकारी है। प्रतिकार की शक्ति रखने वाला ही क्षमा गुण का अधिकारी होता है। महाभारत का एक कथानक है -

द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वस्थामा ने अनीति से द्रौपद्री के पाँचों पुत्रों की हत्या - सोते हुए - रात्रि में कर दी। पाँचों पांडव एवं द्रौपद्री अत्यधिक दु:खी थे। द्रौपद्री के सामने उसके पुत्रों का हत्यारा अश्वस्थामा पकड़ कर ला दिया गया और हत्यारे को प्राणदंड देने को कहा। द्रौपद्री अपने पुत्रों के विरह में अत्यधिक व्यथित थी, अनायास ही उसके अन्तर में माँ का वात्सल्य और ममता उमड़ आई, उसका क्रोध शांत हो गया। उसने कहा- ''इसे प्राणदान दे, क्षमा कर दो।''

पांडवों सहित सभी को आश्चर्य हुआ तो द्रौपदी ने कहा- ''आज पुत्र-वियोग में जैसे मैं व्यथित हूँ, गुरु-माता को वह असहनीय वेदना नहीं दे सकती। अश्वस्थामा ने यह अनीतिपूर्ण अपराध क्रोध के आवेश में किया है, इसे क्षमा कर दो।'' वह द्रौपदी के चरणों पर गिर गया, इधर गुरु माता ने द्रौपदी को गले से लगा कृतज्ञता भरी दृष्टि से आशीर्वाद दिया।

क्षमा कमजोर का नहीं, वीर का आभूषण है। शक्तिमान समर्थ मनुष्य ही क्षमाशील कहलाने का अधिकारी है। प्रतिकार की शक्ति रखने वाला ही क्षमा गुण का अधिकारी होता है।

यह 'क्षमा' का आदर्श है। जहाँ किसी के अपराध, क्रोध, आक्रोश के वचनों को सुनकर सहन करने का पवित्र भाव आविर्भाव होता है। जबकि क्रोध आत्मा की एक ऐसी विकृति है, ऐसी कमजोरी है जिसके कारण उसका विवेक नष्ट हो जाता है। लोक में जितनी हत्यायें, आत्म-हत्यायें एवं मार-पीट होती है, उसमें अधिकांश क्रोधावेश में होती हैं। क्रोध के समान आत्मा का कोई शत्रु नहीं है। कहा भी गया है-

क्रोधो नाशयते धर्म, विभाव सुरिवेन्धनं।
पापं च कुरुते घोर, मितिमत्वा विषह्यते॥

अर्थात् - क्रोध धर्म को नष्ट कर देता है, जैसे अग्नि ईंधन को नष्ट कर देती है तथा क्रोध भयंकर पापों को कराता है; ऐसा मानक क्रोध छोड़ देना चाहिए।

सामान्यत: भी दृष्टव्य है, क्रोध प्राणों को हरने वाला है अत: शत्रु है, इसे सर्वप्रधान शत्रु माना गया है। ये महातीक्ष्ण तलवार की तरह है, जो स्व-धात तक करा देता है, व्यक्ति कितना ही ज्ञानवान हो, व्रत-उपवास-तप करता हो, दान देता हो परन्तु क्रोध है तो सभी उससे दूर-भागते हैं। वास्तव में देखा जाये तो क्रोध अज्ञानता से आरम्भ होता है और पश्चाताप पर जाकर समाप्त होता है परन्तु तब तक क्रोधी अपना सर्वस्व खो देता है। मनोवैज्ञानिकों के विश्लेषण के अनुसार क्रोध आने के कुछ विशेष कारण होते हैं, जैसे इच्छापूर्ति में बाधा होना, मनचाहा न होना, मानसिक अस्त-व्यस्तता का होना तथा अस्वस्थता भी एक विशेष कारण है। अत: विवेकशील मनुष्य इन परिस्थितियों में समझौता कर लेता है। वह अपने सकारात्मक दृष्टिकोण, सहिष्णुता एवं समता भाव से विपरीत परिस्थितियों में पुरुषार्थ से विजय प्राप्त कर लेता है अथवा चिन्तन-मनन से नकारात्मक सोच को छोड़ सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। क्रोध में ईंधन न पड़े इसके लिये सहनशीलता के साथ मौन-चिन्तन विशेष प्रयोजनय सिद्ध होता है।

एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है-''ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ'' अर्थात् ज्ञान होने पर मौन और शक्ति होने पर क्षमा महानता का प्रतीक है। मानव जीवन की सार्थकता के लिए अन्तरंग में क्षमा के भाव स्थायित्व लें तभी सच्ची क्षमा हृदय से उद्भूत होती है और अन्तरंग की कलुषता को शुचिता में परिवर्तित कर देती है।

कलकल बहती हुई एक नदी में एक विच्छू गिर गया और नदी के प्रवाह के साथ बहने लगा। किनारे पर खड़े एक साधु ने यह देखा उन्होंने अनुकम्पावश उस विच्छू को अपनी हथेली पर उठा लिया। बिच्छू ने तुरन्त डंक मारा। डंक के प्रहार से साधु का हाथ काँप उठा और वह बिच्छू पुन: नदी में गिर गया। साधु ने पुन: उसे उठाया, बिच्छू ने पुन: डंक मारा और वह पुन: नदी में गिरकर बहने लगा। साधु उसे उठाने हेतु पुन: झुके तो पास ही खड़े एक सामान्य व्यक्ति से नहीं रहा गया। उसने साधु से पूछा - यह बिच्छू बार-बार आपको डंक मार रहा है फिर भी आप इसे बचाने का प्रयास क्यों कर रहे हैं? इस पर साधु ने हंसकर उत्तर दिया - भाई! इस बिच्छू का स्वभाव है डंक मारना, यह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, तो

मैं अपना क्षमा-स्वभाव कैसे छोड़ सकता हूँ? जैसे माँ अपने बच्चे को दूध पिलाकर पुष्ट करती है, रक्षा करती है, उसी प्रकार इस आत्मा का कोई पुष्ट करने वाला है तो वह है क्षमा धर्म।

ईसा मसीह को जब सूली पर चढ़ाया गया उस समय उन्होंने कहा- हे प्रभु! ये लोग क्या कर रहे हैं, इसका इनको ज्ञान नहीं है, इसलिए इनको मेरी ओर से क्षमा कर देना। ये अज्ञानतावश ऐसा कर रहे हैं इन्हें क्षमा करना। इतना कहकर उन्होंने प्राण त्याग दिये।

नारायण श्रीकृष्ण वन में सो रहे थे। जरे नामक व्यक्ति ने मृग समझकर वाण मारा, जो नारायण श्री कृष्ण के लगा। जरे ने आकर देखा तो भयभीत हो गया, क्षमा माँगने लगा। श्री कृष्ण ने उसे क्षमा किया, आशीर्वाद दिया और वहाँ से चले जाने को कहा कि - हे जरे! तू यहाँ से तत्काल चला जा, अन्यथा बलराम आते ही तुझे नहीं छोड़ेंगे। उनके मन में अपने प्राणहन्ता के प्रति किंचित् मात्र क्रोध न हुआ। महापुरुषों के ऐसे ही भाव होते हैं।

भगवान महावीर ने कहा है कि अपनी आत्मा पर ही क्षमा करो। क्षमा एक महान् तत्व-ज्ञान है। दूसरे जीवों पर क्षमा करना सामान्य व्यावहारिक रूप है पर सर्वोत्कृष्ट क्षमा तो अपनी आत्मा पर है। यदि हम क्षमा भाव धारण करने का निश्चय करते हैं तो हमारा मनुष्य जीवन अवश्य सफल हो जाएगा। क्षमा कोई सुनने-सुनाने की चीज नहीं है। यह तो पालन करने की चीज है। तपस्वी साधु उत्तम क्षमा को धारण करते हैं। गृहस्थ को भी साधारण क्षमा का पालन तो अवश्य करना चाहिए।

जब आप स्वयं के प्रति किसी भी क्रोध को पसन्द नहीं करते तो दूसरे पर क्रोधित कैसे होते हैं? यदि हम शांत रहें, उत्तेजित न हों तो दूसरा व्यक्ति हमारे समक्ष कितना ही क्रोध करें, परन्तु हमारे क्रोध के अभाव में उसका क्रोध स्वयं शांत हो जाएगा, वह अकेला क्रोध करते-करते थक जाएगा।

दीक्षा के पश्चात् भगवान् महावीर विहार करते हुए उज्जैन पहुँचे। वहाँ श्मशान में एक वृक्ष के नीचे तपस्या में लीन हो गये। श्मशान भूमि में रहने वाले लोगों ने समझा - यह हमारी भूमि पर अधिकार करने के लिए आया लगता है। वे अपने साथियों सहित उनके पास पहुँचे। उन पर अनेक तरह के उपसर्ग करने लगे, विकराल रूप धारण कर डराने लगे विचित्र भयंकर ध्वनियाँ निकालने लगे, वे येन-केन प्रकारण उन्हें वहाँ से भगाना चाहते थे परन्तु महावीर दृढ़-निश्चल-अडिग तपस्या में लीन रहे किंचित् भी विचलित न हुए। वे सब अपने प्रयासों में विफल होकर थककर बैठ गये और सोचने लगे कि - इतनी विघ्न-बाधाओं के पश्चात् भी इनका ध्यान विचलित नहीं हुआ, अवश्य ही ये कोई महात्मा हैं। तब उनके चरणों में झुककर क्षमा माँगने लगे।

धर्म एवं धर्मशास्त्र सुनने में बहुत मधुर लगते हैं, परन्तु उनका प्रयोग इतना सहज नहीं है। शास्त्रों में बताई गई विधि के अनुसार आत्मा के गुणों को समझने के पश्चात् क्रोध से होने वाली हानियों को समझने के पश्चात्, हानिकारक क्रियाओं व पदार्थों को छोड़ना ही वास्तव में धर्म का पालन करना है। धर्म सुनने व पढ़ने की सार्थकता तभी है। यदि किसी व्यापार में हानि ही होती रहती है तो उसे बंद कर देते हैं। इसी प्रकार इस क्रोध को जो निरन्तर आत्मा को हानि पहुँचा रहा है, छोड़ना चाहिए। जहाँ तक संभव हो वहाँ तक तो छोड़िए।

एक वृद्धा थी। एक शाम कार्य करते-करते उसकी सुई खो गयी। वह अपनी झोपड़ी के बाहर उस सुई को खोजती रही, पर सुई न मिली, अंधेरा बढ़ चला, वह ढूँढती रही। उधर से एक व्यक्ति गुजरा। उसने वृद्धा से पूछा - माई! क्या खोजती है। वृद्धा ने उत्तर दिया - मेरी सुई गिर गई, वही खोज रही हूँ। उस व्यक्ति ने कहा - तो अंधेरे में कैसे मिलेगी? वृद्धा ने सोचा - ठीक ही तो कहता है, अंधेरे में कैसे मिलेगी? यह सोचकर वह सड़क के किनारे के प्रकाश स्तम्भ के नीचे आकर सुई खोजने लगी। उधर से फिर एक व्यक्ति गुजरा, उसने वृद्धा से पूछा - माई! क्या खोजती है? उत्तर मिला - मेरी सुई खो गई, वही खोजती हूँ। उस व्यक्ति ने पूछा - सुई खोई कहाँ थी? वृद्धा ने कहा - वह तो वहाँ झोपड़ी के बाहर खोई थी। वह हंसा - अरे! खोई वहाँ पर है और खोजती यहाँ पर है, सुई कैसे मिलेगी? हम क्रोध को जान रहे हैं, समझ रहे है पर उससे छूट नहीं पा रहे हैं। यदि समय रहते उसको नहीं छोड़ा तो जीवन में शांति कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्षमा को धारण कर हम कठिनाइयों को हल कर सकते हैं। क्षमा मनुष्य का सर्वोच्च धर्म है। क्षमा जल का स्रोत है। क्रोध विष है और क्षमा अमृत है। क्षमा धारण करने वाले का मन और मस्तिष्क दोनों शीतल रहते हैं। ■

हर समस्या को हल कर सकता है प्यार

साईं बाबा

जाने-माने फकीर और संत साईं बाबा ने अपने जीवनकाल में कई बड़े चमत्कार किए। भक्तों ने उन्हें साईं (साक्षात ईश्वर) नाम दिया और ईश्वर के अवतार के रूप में पूजना शुरू कर दिया। आज दुनिया भर में उनके लाखों भक्त हैं। बाबा प्यार, क्षमा, दान, मदद, शांति, संतुष्टि और गुरु की भक्ति जैसे गुणों को जीवन में अपनाने की शिक्षा देते थे। उनके उपदेशों में हिन्दुत्व और इस्लाम, दोनों की शिक्षाओं का समावेश था, जिससे समाज में सौहार्द कायम हुआ।

- कर्म की उपज विचारों से होती है, इसलिए ये विचार ही है, जो ज्यादा मायने रखते हैं।
- ध्यान रखें आपके आसपास की चीजें आपको गलत राह पर न ले जाएं, क्योंकि यह दुनिया एक छलावा है, जिसमें गलत रास्ते और झूठे आदर्शों एवं विचारों की भरमार है।
- जिंदगी गाना है- इसे गाते रहो, जिंदगी खेल है-इसे खेलते चलो, जिंदगी चुनौती है-इसे स्वीकार करो, जिंदगी सपना है-इसे जानो, जिंदगी बलिदान है-इसे अर्पित करो, जिंदगी प्रेम है-इसका आनंद उठाओ।
- आसमान में मौजूद लाखों तारों को देखो, जो ईश्वर द्वारा बनाई गई कुदरत के हिस्से के रूप में एकता का संदेश दे रहे हैं।
- दूसरों को प्यार और मदद दीजिए, ताकि वे अपनी जिंदगी के बेहतरीन लेवल तक पहुंच सके। प्यार एक छूत की बीमारी की तरह है और हर समस्या का हल करने का माद्दा रखता है।
- इंसान अनुभवों से सीखता है और आध्यात्मिक पथ इंसान को विभिन्न तरह के अनुभव हासिल कराता है। ये अनुभव उसे शुद्ध और स्वच्छ बनाने में मदद करते हैं।
- जिंदगी के मायने वर्तमान में जीने से हैं। जिंदगी के इस लम्हे को जी भर के जी लो। आज के विचार और कर्म ही आपका भविष्य तय करेंगे।
- इंसान को कमल के फूल की तरह होना चाहिए, जो कीचड़ में पैदा होने के बाद भी बिना किसी मलाल के लहलहाता रहता है।

आस्था

डॉ. कल्याणमल लोढ़ा

प्रार्थना का महत्त्व

अमरीका के जज हेरॉल्ड मेडिना का मत है कि आत्मशक्ति का विकास तभी होता है जब व्यक्ति मानवीय शक्ति से परे परम सत्य का संधान करता है। इसके लिए श्रद्धापूर्वक किया गया जप विधान सर्वोत्तम साधन है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य मनोचिकित्सक सर एलफ्रेड टोरी ने प्रतिपादित किया है कि जीवन में प्रार्थना की प्रवृत्ति का उदय होना आवश्यक है तथा साधक साधना में सिद्धि प्राप्त करता है। आधुनिक अनुसंधानों ने प्रमाणित कर दिया है कि मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। इसके द्वारा आपका 'इलेक्ट्रोडायमिक फील्ड' और दिक् बदल जाता है। किरलियान फोटोग्राफी ने यह निष्कर्ष निकाला कि जब व्यक्ति की भावभूमि बदलती है तो उसका विद्युतमंडल भी बदल जाता है। कदाचारी, मिथ्यावादी, हिंसक का आभामंडल रुग्ण, कुत्सित और हेय होता है।

रूस की नेल्या मिखायलोवा और अमरीका के प्रोफेसर एडजर कायसी (जिन्हे 'स्लीपिंग पॉकेट' कहते हैं) ने इसे प्रमाणित कर दिया है कि आत्मदेश में आत्म चैतन्य के कारण व्यक्ति भविष्य का पूर्णत: परिचय प्राप्त कर सकता है। मिखायलोवा तो ध्यान से वस्तु को गतिमान कर देती है। आज वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि हमारे चारों ओर ऊर्जा है, उसे घनीभूत किया जा सकता है। मंत्र की भी यही आधारशिला है। आज विज्ञान ने ऐसे यंत्र भी तैयार किए हैं जो शक्ति को बरबस अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

मास्को विश्वविद्यालय के डॉ. बासिलिएवन्न ने 'आर्टिफिशियल री-इन्कोरनेशन' से पुनर्जन्म को प्रमाणित कर दिया है। इन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला है। गेसिंग, ओनेन, बेकस्टर ने विभिन्न संदर्भों में यही तथ्य उजागर किया है। फ्रेंच विद्वान बोबिस ने यह सिद्ध किया है कि ज्यामिति की आकृतियों का ऊर्जाओं से निकट संबंध है। उसने मंत्र विद्या का सत्य उजागर किया है। डॉ. रूडोल्फ किट ने अपनी प्रयोगशाला में यह प्रमाणित किया है कि सद्भाव का प्रभाव किस प्रकार पेड़-पौधों पर पड़ता है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की डिलीवार प्रयोगशाला ने यह प्रयोग किया है कि व्यक्ति के विचारों का उसके रक्त पर कैसा प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की विचारधारा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। पेड़-पौधे भी आपके साथ हंसते एवं खिन्न होते हैं। प्रार्थना, मंत्र मनुष्य के मंगल को बढ़ाकर उसे पर्यावरण और बाह्य जगत से जोड़ते हैं, जिससे साधक ही नहीं परिवेश और पर्यावरण भी मंगलमय होते हैं। यही प्रार्थना और साधना का मंगलमय रूप है।

यह भी प्रमाणित हो गया कि जो व्यक्ति जप, ध्यान, साधना आदि करते हैं उनका रक्त प्राय: दोषरहित रहता है। इसके विपरीत कषाययुक्त व्यक्ति का रक्त दोषपूर्ण रहता है। इस तथ्य के प्रमाणित होने पर ही रेडक्रास सोसायटी ने यह निर्देश दिया कि सदाचारी व्यक्ति को कदाचारी का रक्त नहीं दिया जाए।

प्रार्थना में अद्भुत चमत्कारी शक्ति है। डॉ. अलेक्सिस कैरेल ने अपने ग्रंथ 'मैन दि अन-नोन' में अनुसंधानों को प्रकाशित कर इसे सिद्ध किया है। इससे कई व्याधियां दूर हो गई हैं। डॉ. हार्वर्ड समरवेल की कृति 'आफ्टर एवरेस्ट' एवं डॉ. शेरवुड की कृति 'द विल टू सरवाइव आफ्टर डेथ' में भी यही उल्लेख मिलता है। इस बारे में 'वेस्टर्न साइक्लोजी एंड हिंदू साधना', 'साइकोलोजी, रिलीजन एवं हीलिंग' भी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। डॉ. हर्बर बेनसन ने वर्षों के अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रार्थनागत उपचार एवं रोग निवारण से व्यक्ति एवं परिवेश दोनों शुद्ध तथा सात्विक होते हैं। पूजा, स्तोत्र, मंत्रोच्चार आदि से मनुष्य की जुगुप्सा, जिजीविषा, तनाव, क्रोध आदि समाप्त होते हैं। इसे बेनसन ने 'रिलेक्सेशन रेस्पॉन्स' कहा है। डॉ. बेनसन का मत है कि अंतर्ज्ञान प्रेक्षा से हमें मानसिक शांति प्राप्त होती है। कैदियों पर इसका सफल प्रयोग किया गया। बेनसन ने 'ओम्' का उदाहरण भी दिया है।

अमरीका के जज हेरॉल्ड मेडिना का मत है कि आत्मशक्ति का विकास तभी होता है जब व्यक्ति मानवीय शक्ति से परे परम सत्य का संधान करता है। इसके लिए श्रद्धापूर्वक किया गया जप विधान सर्वोत्तम साधन है। डॉ. एलफ्रेड टोरी ने सभी व्याधियों का संबंध मानसिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओं से बताया है। प्रार्थना आधि-व्याधि से बचने का सफल माध्यम है। संक्षेप में, यही कहा जा सकता है कि 'सर्वे वर्णात्मका मंत्रास्ते च शत्कया'। सारे वर्ण शिव रूप की सत्यता, सार्थकता और समर्थता प्रतिपादित करते हैं। भगवती देवताओं से कहती है:—हे देवगण! जीवों के इहलौकिक एवं पारलौकिक सब प्रकार के अभ्युदय में मंत्र प्रपंच शब्द समूह में और सब शब्द प्रणव में, समस्त भाव-राशि अद्वैत भाव में निश्चित ही परिणत होती है। इस दृष्टि से प्रार्थना जब स्वभाव में रमण करने लगती है तो मन, देह और प्राण कई अलौकिक अनुभवों से गुजरते हैं। ■

संगीत और जीवन

कैलाश खेर

मुझे वे दिन याद हैं जब मेरे पिता लोकगीत गाया करते थे और मैं बड़े गौर से सुनता था। तब हमारे घर कोई साधु-महात्मा आते थे। वे इकतारे पर जब अपनी मधुर आवाज में भक्ति के कोई पद गुनगुनाते तो मैं भी विभोर होकर गाने लग जाता था। उनके गानों का मेरे मन-मस्तिष्क पर एक अद्भुत असर होता था। उन गानों का अर्थ प्राय: मैं नहीं समझ पाता था। मैं पिताजी से पूछता कि आखिर ये लोग क्यों इस शरीर को माया बताते हैं, क्यों ये कहते हैं कि हमें एक दिन मिट्टी में मिल जाना है? पिताजी कहते कि बड़े होने पर सब समझ जाओगे। आज भी मुझे वही गीत आकर्षित करते हैं जो जीवन और प्रकृति के मूलभूत सत्य की बात करते हैं। इसलिए मुझे रहस्यवादी और सूफी संगीत बेहद पसंद है। मैं इस बात को लेकर बेहद सचेत रहता हूं कि मैं क्या गा रहा हूं। संगीत मेरे लिए सिर्फ मनोरंजन का माध्यम नहीं है। यह हमारी आत्मा को जगाना है। संगीत हमारा नौ रसों से साक्षात्कार कराता है। मुझे ऐसे लोग पसंद हैं जो दिल से गाते हैं और संगीत में डूब जाते हैं।

शास्त्रोक्ति

डॉ. के. के. अग्रवाल

उपनिषदों में सुखी जीवन के सूत्र

हमारे उपनिषदों के छह सूत्रों को छह महावाक्य माना गया है। ऐसा समझा जाता है कि इनमें सभी उपनिषदों का निचोड़ है। हम यहां उन छह महावाक्यों की चर्चा कर रहे हैं।

इनमें से प्रथम सूत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को सबने सुना होगा। इसका अर्थ है, पूरी दुनिया ही मेरा परिवार है। इसकी शिक्षा प्राचीनकाल से ही दी जा रही है। आज के इस औद्योगीकरण और ग्लोबलाइजेशन के जमाने में लोग इस संकल्पना को फिर से समझ रहे हैं। इस पर नए सिरे से चर्चाएं हो रही हैं।

अधिकतर धर्मों में इस प्रकार की बात कही गई है। वसुधैव कुटुम्बकम् की धारणा हमें उस प्यार की शिक्षा देती है, जो हर जीव, हर आत्मा में विद्यमान है। शरीर में विद्यमान जीव के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि जीवन भर प्यार करने वाली पत्नी भी अपने मृत पति के शरीर को सहज हाथ लगाना नहीं चाहती। यानी आपसे जो भी लगाव, स्नेह है वह जीव या प्राण के कारण ही है। भज गोविंदम् के तीसरे सूत्र में शंकराचार्य ने इसकी चर्चा की है।

'तत्वम् असि' उन छह महावाक्यों में से दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र है, जिसमें उपनिषदों का सार समाहित है। मूल रूप से यह वाक्य छांद्योग्य उपनिषद में है। इसका अर्थ यह है कि हर प्राणी में एक ही प्रकार का जीव है। दूसरे शब्दों में इसे ऐसे समझा जा सकता है कि जो जीव आप में है, वही मुझमें है। अहम् आत्मा ब्रह्म (मंडूक उपनिषद) और अहम् ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक उपनिषद) जैसे महावाक्य से इस धारणा की पूर्ण व्याख्या होती है।

पहले श्लोक के अनुसार आत्मा या जीव और ब्रह्म–एक ही हैं। मैं ब्रह्म हूं, यह दूसरे श्लोक का अर्थ है। अर्थात् अगर आपमें, मुझमें और दूसरों में विद्यमान जीव एक ही है तो हम सभी एक परिवार के सदस्य हैं, लेकिन इसे समझने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञानी ही इस संकल्पना को समझ सकते हैं।

वेदों में अतिथियों को देवता सदृश बताया गया है। अतिथि देवो भव (अतिथि देवता समान होते हैं) को वही महत्व दिया गया है जो मातृ देवो भव और पितृ देवो भव जैसी उक्तियों को मिला है।

कलियुग में लोग मूल सिद्धांतों को भूल गये हैं और दुनिया को धर्म के आधार पर बांट दिया गया है। दुर्भाग्यवश हमारे राजनेता भी इस संकल्पना को नहीं समझते। अगर इसे सत्य माना जाए तो कोई भी व्यक्ति दुनिया के किसी भी भाग में अजनबी नहीं समझा जाएगा। उसे कहीं भी किसी प्रतिकूल घटना का डर नहीं रहेगा। उसके प्रति किसी प्रकार की घृणा नहीं रहेगी।

विश्व में शांति तब तक कायम नहीं हो सकती जब तक कि वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा को नहीं समझा जाएगा। यदि किसी भी वजह से परायेपन का बोध है तो संघर्ष भी होगा और कटुता भी होगी। तब तक शांति भी स्थापित नहीं हो सकती।

वेदों में अतिथियों को देवता सदृश बताया गया है। अतिथि देवो भव (अतिथि देवता समान होते हैं) को वही महत्व दिया गया है जो मातृ देवो भव और पितृ देवो भव जैसी उक्तियों को मिला है। सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् हमारे देश में प्रचलित उक्ति है। यह ब्रह्म सत्य की व्याख्या करता है और इसकी प्राप्ति का मार्ग भी बतलाता है। इस उक्ति में जीवन के तीन पक्ष बताए गए हैं– सत्य, शिव और सुंदर। यहां शिव चेतना और सुंदर आंतरिक आह्लाद का प्रतीक है। इस उक्ति को दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सत्य ही शिव है। और सत्य ही सुंदर है।

इस उक्ति में मुख्य रूप से सत्य के महत्व को दर्शाया गया है। सत्य के मार्ग पर चल कर ही आप शिव और आंतरिक प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं। सत्य ही हमारे मस्तिष्क, बोली और कृत्यों में एकरूपता या मेल स्थापित करता है। धर्म के तीन पक्ष भी सत्य, शिव और सुंदर ही हैं। एक और उक्ति सत्, चित्त और आनंद का भी यही अभिप्राय है। यहां चित्त चेतना और आनंद सुंदर या आंतरिक प्रसन्नता का द्योतक है। ■

शांति का रास्ता

एक बार एक सेठ स्वामी विवेकानंद से मिलने पहुंचा। उसने उन्हें एक थैला देते हुए कहा, 'स्वामीजी, इसमें सोने के एक हजार सिक्के हैं। मैं इसे आप के आश्रम के लिए दान दे रहा हूं।' विवेकानंद ने उससे पूछा, 'आप क्या करते हैं?' सेठ बोला, 'स्वामीजी, मैं कपड़े का आढ़ती हूं। मेरे पास सब कुछ है मगर शांति नहीं है। हर समय मैं बेचैन रहता हूं।' स्वामीजी ने थैला खोला और वहां उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक सिक्का देने लगे। यह देख सेठ परेशान होकर बोला, 'स्वामीजी, आप यह क्या कर रहे हैं? यह धन तो आप के आश्रम के लिए है।' विवेकानंद ने कहा, 'अब इन सिक्कों से तुम्हें क्या मतलब है। अब ये तो तुम्हारे हैं नहीं। अब इसे मैं जैसे चाहूं खर्च करूं।'

सेठ बोला, 'स्वामीजी, यह सब मेरा नहीं है मगर इस धन को अनावश्यक रूप से खर्च किए जाने पर मुझे दुख हो रहा है। मैं जानता होता कि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपको देता ही नहीं।' विवेकानंद ने कहा, 'जब तुम दूसरे के धन को अपना समझ कर उसके बंधन से बंधे हो तो अपने धन के प्रति तुम्हारा मोह तो बहुत ज्यादा होगा। यह ठीक है कि तुम्हारा कर्म पैसे कमाना है मगर अपनी कमाई से तुम गरीबों की भलाई भी करोगे तो तुम्हारी बेचैनी अपने आप दूर हो जायेगी। साधु-संतों को दान देने से तुम्हें शांति नहीं मिलेगी।' यह सुनकर सेठ शर्मिंदा हो गया और उसने वचन दिया कि वह अपनी कमाई का पचीस प्रतिशत गरीबों की सेवा में खर्च करेगा।

–सुरेश सिंह

महत्ता

प्रशांत जैन

बहुत अच्छे मैनेजमेंट गुरु हैं गणपति

गणेश के विशाल मस्तक के नीचे दो छोटी–छोटी आंखें निरंतर लक्ष्य पर केन्द्रित रहने का संदेश देती हैं। लक्ष्य से आंखें हटने पर दुर्घटना की संभावना बढ़ जाती है। फोकस रहने वाला व्यक्ति ही बेहतर प्रशासक बन सकता है।

हाल ही में मैंने ब्रह्म कुमार चंद्रशेखर की एक किताब 'मैनेजमेंट गुरु श्री गणेश : द लॉर्ड ऑफ सक्सेस' पढ़ी। इसमें गणेश के देवत्व की व्याख्या मैनेजमेंट के संदर्भ में की गई है। यह दिलचस्प है और किसी इंसान को अपनी पर्सनैलिटी डेवेलप करने में काफी मदद कर सकती है।

चंद्रशेखर लिखते हैं कि गणेश का हाथी के आकार का विशाल मुख उनकी विस्तृत सोच और जाग्रत मस्तिष्क का प्रतीक है। बड़ा मस्तक 'बड़ा' सोचने और 'बड़ा' करने की ऊर्जा देता है। ठीक इसी तरह यदि कोई व्यक्ति 'बड़ा' नहीं सोच सकता, तो उसके लिए 'बड़ा' करना भी मुश्किल होगा। इसलिए हम भी गणेशजी की तरह बड़ा सोचें और बड़ा करें, जो सबके हित में हो।

गणेश के दो बड़े-बड़े कान ज्यादा सुनने और कम बोलने का संदेश देते हैं। एक अच्छा मैनेजर वही हो सकता है, जो सुने सबकी पर करे अपने मन की। एक अच्छे लीडर को चाहिए कि वह हमेशा अपने कान खुले रखे, सबको ध्यानपूर्वक सुने और उचित को ग्रहण करते हुए अनावश्यक बातों को एक तरफ रख दे।

गणेश के विशाल मस्तक के नीचे दो छोटी-छोटी आंखें निरंतर लक्ष्य पर केन्द्रित रहने का संदेश देती हैं। लक्ष्य से आंखें हटने पर दुर्घटना की संभावना बढ़ जाती है। फोकस रहने वाला व्यक्ति ही बेहतर प्रशासक बन सकता है।

गणेश के कान भले ही बड़े हों, पर उनका मुंह बहुत ही छोटा है, जो थोड़ा बोलने और सही बोलने की प्रेरणा देता है। ज्यादा बोलने से ज्यादा समस्याएं आती हैं। लिहाजा एक अच्छे मैनेजर के लिए बेहतर है कि वह जो भी बोले सार्थक बोले। कम बोले पर मधुर बोले, तभी वह गणेशजी की तरह सभी के दिलों पर राज कर सकता है। उनकी लंबी सूंड उन्हें दूर की चीजों को सूंघने में समर्थ बनाती है। जिस तरह हाथी अपने विशाल शरीर के बावजूद एक नन्हीं सी चींटी को लेकर सावधान रहता है, उसी तरह एक कुशल मैनेजर भी छोटे-छोटे खतरों के प्रति लापरवाह नहीं रहता और सर्तकता बरतता है। गणेश की ही तरह किसी अच्छे मैनेजर को भी अपने शत्रुओं को कभी कमतर नहीं आंकना चाहिए।

पेट पचाने का स्थान होता है। लंबोदर का लंबा पेट बहुत सारी अच्छी-बुरी चीजों को पचाने की क्षमता रखता है। ठीक इसी तरह एक अच्छे ऐडमिनिस्ट्रेटर को अच्छी-बुरी हर तरह की खबर झेलने की क्षमता रखनी चाहिए। उसे अच्छी स्थितियों में भी अति प्रसन्नता और बुरी परिस्थितियों में घबराहट का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। चतुर्भुज गणेश के चार हाथ मिलकर काम करने के जुनून और टीम भावना को व्यक्त करते हैं। जब वेदव्यास ने उनसे महाभारत लिखने का अनुरोध किया, तो गणेशजी ने इस काम के महत्व को समझते हुए यह निश्चय किया कि इसके लिए उनके दांत से बेहतर और कोई कलम नहीं हो सकती। उन्होंने अपनी सुंदरता को दरकिनार कर दिया और एक दांत को त्यागना मंजूर किया। इससे प्रेरणा लेते हुए किसी भी अच्छे प्रबंधक को किसी बड़े काम के लिए छोटा त्याग करने से गुरेज नहीं करना चाहिए।

गणेश का व्यक्तित्व मैनेजमेंट के अचूक गुर समेटे हुए है, जिनका सहारा लेकर कोई भी लीडर अपने संस्था को उन्नति की ऊंचाइयों तक पहुंचा सकता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि गीता का पाठ पढ़ाने वाले कृष्ण ही नहीं, गणेश भी बहुत अच्छे मैनेजमेंट गुरु हैं।

जिस तरह वे खास हैं, उसी तरह वे हमें भी कुछ खास बातें सिखाते हैं। अगर किसी संस्था का हेड अपनी संस्था की सभी परेशानियों और बाधाओं को दूर करता है, तो उसे संस्था का 'विघ्नहर्ता' बनने से कोई नहीं रोक सकता।

अगली बार आप जब श्री गणेशजी के दर्शन करेंगे, तो आपका ध्यान उनकी इन खास खूबियों और मैनेजमेंट गुरों पर जाए बिना नहीं रहेगा। ■

डाइबिटीज कम करता है बादाम

बादाम का सेवन करने से डायबिटीज टाइप-2 और दिल के खतरे को रोका जा सकता है। एक नए शोध के दौरान कुछ लोगों को छह सप्ताह तक बादाम खाने को दिए गए ताकि शरीर पर उनके प्रभाव का आंकलन किया जा सके। अध्ययन से पता चलता है कि बादाम खाने से लोगों के डायबिटीज स्तर में काफी सुधार हो गया। साथ ही उनके कोलेस्ट्रॉल स्तर में भी कमी आई। यह शोध यूनिवर्सिटी ऑफ मेडिसीन एण्ड डेनस्ट्री ऑफ न्यू जर्सी के विशेषज्ञों ने किया। शोधकर्ता डॉ माइकल वाइन कहते हैं, 'शोध से साबित हो गया है कि खान-पान के जरिए डायबिटीज और दिल की बीमारी को रोका जा सकता है।

हिमांशु शेखर

हनुमानजी अपना बल क्यों भूलें ?

हनुमानजी के द्वादश नाम हैं- अंजनीसुन, वायुपुत्र, महाबल, रामेष्ट, फाल्गुनसख, पिंगाक्ष, अमितविक्रम, उदधिक्रमण, सीताशोकविनाशन, लक्ष्मण-प्राणदाता, दशग्रीवदर्पहा और हनुमान। जिनके इन पवित्र नामों के स्मरण मात्र से समस्त भय नष्ट हो जाते हों तथा युद्ध में विजय की प्राप्ति होती हो, ऐसे महाशक्तिशाली हनुमानजी अपने बल को क्यों भूल बैठे थे? हनुमानजी के जीवन में ऐसे अनेक अवसर आये जब उनको यह विस्मृति हो गयी कि उनमें असीम शक्ति है और वे सब कुछ कर सकते हैं। वाल्मीकि रामायण में ऐसे दो विशिष्ट अवसरों का उल्लेख है।

बाली की कथा

पहला प्रसंग सुग्रीव और बाली की कथा से जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि बाली रावण से भी अधिक शक्तिशाली था, परन्तु हनुमानजी की तुलना में उसका बल भी नगण्य था। फिर भी जब बाली हनुमानजी के अत्यंत प्रिय मित्र सुग्रीव को प्रताड़ित तथा पीड़ित करने लगा तब वे हाथ पर हाथ रखकर बैठे रह गये, अपने इष्ट बंधु के लिए वे कुछ नहीं कर सके। सर्वसमर्थ होने पर भी हनुमानजी ने बाली को अत्याचार करने से क्यों नहीं रोका और उसका वध क्यों नहीं किया? इस शंका का निवारण करते हुए भगवान श्रीराम ने महर्षि अगस्त्य से कहा था-

'नहि वेदितवान मन्ये हनूमानात्मनोबलम।
यद् दृष्टवान्जीवितेष्टं क्लिश्येन्ति वानराधिपम्॥'

(वा.रा. उत्तरकांड 35.12)

अर्थात् 'मैं यह मानता हूं कि उस समय हनुमानजी को अपने बल का पता ही नहीं था, इसीलिए वे अपने प्राणों से भी प्रिय वानर-सम्राट सुग्रीव को कष्ट उठाते हुए केवल देखते रहे। यदि हनुमानजी को अपनी शक्ति का विश्वास होता तो वे बाली को उसी प्रकार नष्ट कर डालते जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि घासफूस को भस्मीभूत कर देती है।

सीता की खोज

हनुमानजी की आत्म-विस्मृति का दूसरा प्रसंग समुद्र-लंघन से संबद्ध है। जब श्रीराम की महारानी सीताजी को ढूंढ़ निकालने के लिए सभी वानरवीर दक्षिण दिशा में अवस्थित समुद्र के पट पर एकत्रित हुए तो उसकी उत्ताल तरंगों को देखते ही उन पर मोहनजित अवसाद छा गया। अंगद ने उन्हें समझाया कि पराक्रम का अवसर आने पर तथा उस समय जब परिस्थिति विपरीत हो विषाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार क्रोध में भरा हुआ सर्प समीप आये हुए बालक को काटकर मार डालता है, उसी प्रकार विषाद पुरुषार्थ को नष्ट कर देता है।

हनुमानजी वानरवीरों के बीच बैठे हुए प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ सुन रहे थे। सुग्रीव ने यह आदेश दे रखा था कि यदि एक महीने के अंदर सीता का पता नहीं लगाया गया तो दोषी वानरों को मृत्युदंड दिया जाएगा। वानरों में भय समा गया था और अंगद भी चिंताकुल थे।

अंगद ने उपस्थित वानरों से कहा कि समुद्र को लांघने की जिसमें जितनी क्षमता हो, वह उन्हें बताये। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, मैन्द, द्विविद, सुषेण तथा जाम्बवान ने अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन किया, किन्तु महाबली हनुमान एक कोने में चुपचाप बैठे रहे, क्योंकि असीम शक्ति से युक्त होने पर भी उन्हें यह विश्वास नहीं हो रहा था कि वे सचमुच समुद्र लंघन कर सकते हैं।

वानरों और भालुओं के यूथपति तेजस्वी जाम्बवान हनुमानजी की अपरिमित शक्ति से अच्छी प्रकार परिचित थे। जब उन्होंने केसरीकुमार को उनके अपार बल का स्मरण कराया, तब उन्हें अपनी शक्ति का विश्वास हो गया और वे समुद्र-लंघन के लिए तैयार हो गये।

विस्मृति का कारण

हनुमानजी अपना बल क्यों भूल बैठे थे? कहा जाता है कि बाल्यावस्था में हनुमानजी महर्षियों के आश्रमों में जा-जाकर उपद्रव किया करते थे। आश्रम में रखे साधु-संन्यासियों के यज्ञ-पात्रों को पटककर फोड़ डालना, उनके वस्त्रों को चीरफाड़ देना तथा अग्निहोम की सामग्रियों को नष्ट कर देना-यह उनका नित्य का कार्य था। भृगु तथा अंगिरा के वंशों में उत्पन्न ऋषियों के लिए जब बालक हनुमान का उपद्रव असह्य हो गया, तब उन्होंने उन्हें शाप देते हुए कहा-

बाधसे यत समाश्रित्य बलमस्मान प्लवंगमं।
तद् दीर्घकालं वेत्तासि नास्मांक शापमोहितः॥

(बा.रा. उत्तरकांड 36.34, 35)

अर्थात् 'वानरों में श्रेष्ठ वीर' तुम जिस बल के घमंड में आकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शाप से मोहित होकर दीर्घकाल के लिए भूल बैठोगे-तुम्हें अपनी शक्ति की याद नहीं रहेगी। जब तुम्हें कोई तुम्हारी कीर्ति का स्मरण करा देगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।'

कीर्ति से स्मृति

ऋषियों के शाप से ग्रस्त होने के कारण हनुमानजी अपने अतुलित बल को भूलकर पूरी तरह निश्चेष्ट हो गए। जाम्बवान समझदार थे। उन्होंने हनुमानजी को उनकी कीर्ति का स्मरण कराते हुए कहा कि उनकी गति सभी प्राणियों से बढ़कर है तथा वे समस्त सद्गुणों से भूषित हैं। अन्य वीर वानरगण भी महाबली हनुमान की स्तुति करते हुए भीषण गर्जना करने लगे। जाम्बवानजी ने कहा-

पवन तनय बल पवन समाना।
बुद्धि विवेक विज्ञान निधाना।
कवन से काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्हें पाहीं॥

(मानस, किष्किंधा, 29)

हनुमान की तुलना विष्णु से की गयी। अपनी अक्षय कीर्ति को सुनकर हनुमानजी का शरीर पर्वताकार हो उठा,

'सुनतहिं भयउ पर्वतकारा।'

जाम्बवान द्वारा प्रेरित किये जाने पर हनुमान को अपने बल पर पूर्ण विश्वास हो गया और वे ऋषियों के शाप से मुक्त होकर लोकमाता सीता की खोज के अत्यंत कठिन कार्य में लग गये और उन्होंने अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की।

-204, होप अपार्टमेंट, पूर्वी आनंदपुरी
बोरिंग कैनाल रोड, पटना-800001

शास्त्रोक्ति

ओमप्रकाश पोद्दार

गीता का ज्ञान और सुखी पारिवारिक जीवन

सामान्यत: गीता में परिवार का कोई सीधा संदर्भ तो नहीं है लेकिन गीता पढ़ने से यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि पूरी गीता ही सुखी मनुष्य, सुखी परिवार और सुखी संसार को लक्ष्य में रख कर रची गई है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कौरवों पाण्डवों का आपसी झगड़ा सुलझाने का बहुत प्रयास किया लेकिन यह पारिवारिक झगड़ा वे भी नहीं सुलझा सके। यह उनके जीवन की एकमात्र असफलता थी और शायद यही कारण था कि गीता की अवधारणा उनके मस्तिष्क में आयी और महाभारत के युद्ध को उसके सही अंजाम तक पहुंचाने के लिए युद्ध के मैदान में ही उनको गीता का महान उपदेश देना पड़ा। पारिवारिक झगड़े से महाभारत एक इतनी बड़ी घटना बन गई कि वेदव्यासजी को एक महाकाव्य ही लिखना पड़ गया। पारिवारिक ईर्ष्या और भेद-भाव के कारण ही रामायण भी एक महाकाव्य बन गया जिसे वाल्मिकीजी ने लिखा।

गीता का सबसे महत्वपूर्ण उपदेश यही है कि यदि हम अपनी देह-दृष्टि से देखेंगे तो हमें संसार में सब लोग अलग-अलग देह रूप में दिखाई देंगे, जिससे किसी में हमारा राग एवं किसी से द्वेष होना स्वाभाविक है। लेकिन आत्मा की दृष्टि से देखेंगे तो हमें सबमें एक ही आत्मा दिखाई देगी। फलत: किसी से राग-द्वेष नहीं होगा, चाहे वे हमारे अपने सगे हो या अन्य कोई। अत: हम सबसे सम और निष्पक्ष व्यवहार करेंगे। आत्मशुद्धि द्वारा आत्मबुद्धि को जाग्रत कर लेना ही गीता का महान उद्देश्य है।

भगवान राम ने गीतोक्त आचरण को ही अपना कर अपने परिवार को गंभीर संकट से उबार लिया। इसीलिए गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने यह संकेत दिया है कि राम और कोई नहीं मैं स्वयं हूं ''राम: शस्त्रभृतामहम्।'' परिवारजनों के आपसी मतभेद रहित समस्या का समाधान ही रामायण है जिससे परिवार टूटता नहीं है और आपसी मतभेद सहित समस्या का समाधान ही महाभारत है जिसमें परिवार टूट जाता है। यही गीता का परिवार के लिए स्पष्ट संदेश है।

गीता स्पष्ट रूप से बार-बार अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने एवं अपने आप में दैवी संपदा का विकास करने पर ज्यादा जोर देती है। यदि हम अपने मन को वश में रखें, किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखें तो परिवार में छोटे-मोटे झगड़े बेशक होते रहें, लेकिन महाभारत जैसे युद्ध की नौबत नहीं आएगी। यदि द्रौपदी 'अंधे के पुत्र अंधे' कहकर दुर्योधन पर हंसती नहीं तो शायद महाभारत का युद्ध नहीं होता। इसीलिए गीता पुत्र, स्त्री, घर आदि में आसक्ति न रखना और मन को सदा सम रखने आदि पर जोर देती है ताकि शांति बनी रहे-

असक्तिरनभिष्वंग्: पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषं॥

इच्छाएं किसी भी तरह का रूप धारण कर लेती हैं और पूर्ति न होने पर क्रोध का रूप भी धारण कर लेती हैं, अत: इनको जीतने की गीता जोरदार अनुशंसा करती है- ''जहि शत्रु महाबाहो काम रूप दुरासदम्।'' लेकिन साथ ही गृहस्थ धर्म के पालन हेतु ''धर्माविरुद्धो कामोस्मि'' तथा ''प्रजनश्चास्मि कन्दर्प:'' कहकर एक संतुलित, सुखी पारिवारिक जीवन जीने की प्रेरणा भी देती है।

जहां तक 'सुखी जीवन' का सवाल है, सुख एक छलावा है। गीता कहती है, यह संसार ''दुखालयम् अशाश्वतम्'' है। इसलिए इस संसार में सुख की कामना करना जड़ता के सिवाय कुछ नहीं है। गीता के अनुसार यह ''मोघआशा'' स्वयं दुख का कारण बन जाती है। इसलिए हमें 'सुखी जीवन' की बजाय ''सार्थक जीवन' की इच्छा रखनी चाहिए। जीवन की एक ऐसी ही सार्थकता परिवार में कन्या के जन्म से बनती है। कन्या के उचित पालन पोषण, सही संरक्षण, अच्छे संस्कार और सुशिक्षा देकर सुयोग्य वर से ब्याह देने से गीता में वर्णित तीनों सार्थक कर्म-यज्ञ, दान और तप-एक साथ हो जाते हैं। ऐसे ही पवित्र घरों में श्री (लक्ष्मी) का निवास होता है जहां गीता के अनुसार पुण्यवान आत्माएं जन्म लेती हैं। ''शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते (गीता 2/41/2) जो अपने पूर्वजन्म के संस्कारों से पुन: यत्न करके परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं।

दुख के ऊपर सबसे बड़ी रिसर्च (शोध) भगवान बुद्ध ने की और उन्होंने पाया कि 'दुख'' तो है ही और गीता कहती है 'सुख' तो है ही नहीं। गीता के अनुसार 'दुखों का अभाव' ही सुख है-

'प्रसादे सर्वदु:खानाम् हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतासोह्याशु बुद्धि: पर्यवतिष्ठते।'

दुख में जब भगवान हमारे साथ रहता है तो दु:ख की अनुभूति होती ही नहीं है। यही सुखी जीवन का रहस्य है। महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाने पर भगवान ने जब कुन्ती से विदा मांगी कि अब तुम्हारे सारे दुख मिट गए, अब मैं जा रहा हूं, तब कुन्ती ने भगवान से यही मांगा कि हे प्रभो! हमारे भाग्य में सदा के लिए दुख लिख दो ताकि तुम सदा हमारे साथ रहो। हमारे सिक्ख भाई एक 'सबद' बड़े प्रेम से गाते हैं। उसका आशय भी यही है।

लिखनवालियेऽऽऽ.....।
मेरे दिलविच गुरु दा प्यार लिख दे।
मेरी आंख्या विच गुरु दा दिदार लिख दे॥
मेरे नाल गुरु दा विछोह ना लिख।
चाहे मेरे नाल दुखदा पहाड़ लिख दे॥

सुखी जीवन की सहज उपलब्धि और अनुभूति व्यापक प्रेम में ही समाहित है। चाहे यह प्रेम हमें ईश्वर से हो, देश से हो, अपनों से हो, परायों से हो, परिवार से हो या समग्र जीव-जगत से हो।

दुख: बांटने से घट जाता है, सुख बांटने से बढ़ जाता है, अत: वही परिवार सुखी है जहां सबमें प्रेम और त्याग की भावना है। स्वार्थ की भावना तो क्षुद्र और दुर्बल हृदय में रहती है। उदार हृदय के लिए तो पूरी वसुधा ही कुटुम्ब है। इसलिए गीता का मूल मंत्र है-

''क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यम् त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप:।''

-8, मेपल गार्डन, ए-2/60-63, चित्रकूट
जयपुर-302021 (राजस्थान)

डॉ. आनंदप्रकाश त्रिपाठी

एकल परिवार : बुजुर्गों पर अत्याचार

महाजनों येन गत: स पंथा:, ओल्ड इज गोल्ड' आदि कहावतें जहां कभी बुजुर्गों को सम्मान का अहसास कराती थी वहीं आज एकल परिवार के युग में ये कहावतें अपनी अर्थवत्ता खो चुकी हैं। यों कहना प्रासंगिक होगा कि संयुक्त परिवार व्यवस्था के विखण्डित होने के बाद परिवार और समाज में न ही बुजुर्गों का सम्मान रह गया है और न ही बुजुर्गों के सम्मान सूचक कहावतों का कोई महत्व ही रह गया है। एक समय था जब परिवार का सबसे बुजुर्ग व्यक्ति परवार की महत्वपूर्ण कड़ी हुआ करता था। परिवार के प्रत्येक सदस्य बिना उसके आदेश के कोई कार्य नहीं करते थे। उसके मुख से निकले शब्द को ब्रह्मवाक्य समझकर चरितार्थ किया जाता था। घर के महत्वपूर्ण कमरे में उसका आवास होता था। एक-एक पैसा बिना उसकी अनुमति के खर्च नहीं किया जाता था। घर की बहुएं बिना उनकी इजाजत के घर से बाहर नहीं निकलती थी। समय-समय पर नाश्ते, भोजन आदि की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य समझती थी। दिन भर की अपनी-अपनी ड्यूटी के बाद परिवार के सदस्य जब इकट्ठे होते तो घर की मुखिया (बुजुर्ग) की सेवा करते हुए अपनी-अपनी उपलब्धियों एवं अनुपलब्धियों को बांटते थे और उनका मार्गदर्शन लेते थे। किन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान में छोटे और सुखी परिवार के बढ़ते चलन ने बुजुर्गों के मान और उनके अधिकारों को बहुत आघात पहुंचाया है। 'ओल्ड इज गोल्ड' की कहावत 'ओल्ड इज यूजलेस' में परिवर्तित हो गया है। बूड्ढा सठिया गया है, बुड्ढ़ा लालची हो गया है, बुड्ढ़े के मुख से सदैव लार टपकती है, किसके पास समय है जो बुड्ढ़े के पास बर्बाद करें आदि पंक्तियां बुजुर्गों की दुर्दशा को बयां करती हैं।

एकल परिवार में बुजुर्गों की देखभाल के लिए किसी के पास अवकाश नहीं। बेटे और बहू दोनों के कामकाजी होने के कारण वृद्धावस्था में भी उन्हें घर के छोटे-छोटे कामकाज निपटाने पड़ते हैं। ऐसा करने के बावजूद भी यदि बहू के दंशभरे शब्द 'बाबूजी या अम्माजी दिनभर पलंग तोड़ते हैं, एक छोटा सा काम नहीं कर सकते' सुनने पड़ें तो उनकी मन:स्थिति का सहज आभास लगाया जा सकता है। इस प्रकार के आघात पहुंचाने वाले शब्द बेटे-बहुओं द्वारा बुजुर्गों के लिए आम बात है। यही नहीं छोटे पोते-पोतियों को भी उनसे दूर रखने का प्रयत्न किया जाता है कि वे कही इनको बिगाड़ न दें। यही नहीं फ्लैट की संस्कृति में किसी स्टोर रूम में उनके रहने की व्यवस्था की जाती है। हद तो तब होती है जब परिवार के वरिष्ठजन, श्रेष्ठजन को परिवार के उत्सवों में शामिल नहीं किया जाता है। समारोह के समय तक उन्हें अपने कमरे में बंद रहना पड़ता है। यदि कभी शामिल भी हो गये तो गांव के किसान या परिवार का पुराना नौकर के रूप में उनका परिचय कराया जाता है। इस परिचय से बढ़कर भला उनकी दुर्दशा और क्या हो सकती है?

> **प्रत्येक संतान को इस बारे में सोचना चाहिए कि जैसी करनी वैसी भरनी अर्थात यदि हम अपने बूढ़े मां-बाप की सेवा नहीं करेंगे तो एक दिन इस वृद्धावस्था के दौर से हमें भी गुजरना पड़ेगा तो हमारी सेवा कौन करेगा।**

बुजुर्गों के संदर्भ में हाल में हुए एक अध्ययन में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य सामने आये हैं, जो समाज में बढ़ते बुजुर्गों के मानवाधिकार हनन का सबसे बड़ा कारण बनकर उभरे हैं। शोध के अनुसार एकल परिवारों के बढ़ते चलन के कारण वरिष्ठ नागरिक अकेले जिंदगी बिताने के लिए बाध्य होते हैं।, इस कारण से उनकी भावनात्मक और शारीरिक सेहत पर काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण के लिए काम करने वाले दिल्ली स्थित एक गैर सकारी समूह एजवेल फाउंडेशन की ओर से किये गये एक अध्ययन में कहा गया है कि वरिष्ठ नागरिकों के बीच अपने मानवाधिकारों को लेकर कम जागरूकता होती है और ज्यादा उम्र के कारण उन्हें भेदभाव का दंश भी झेलना पड़ता है। संस्था के संस्थापक हिमांशु रथ के अनुसार आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में कई वरिष्ठ नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं और अधिकारों का ध्यान नहीं रखा जाता। सामाजिक तिरस्कार, अकेलापन, अलगाव और बढ़ती उम्र और उपेक्षा के चलते वरिष्ठ नागरिकों के मानवाधिकारों का हनन होता है। यह सर्वे संस्था द्वारा 25 राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों के 300 से ज्यादा जिलों के 50,000 वरिष्ठ नागरिकों के बीच किया गया। इनमें 29 हजार ग्रामीण और 21 हजार शहरी बुजुर्गों को शामिल किया गया। सर्वे के मुताबिक 29 हजार में 18938 ग्रामीण बुजुर्गों और 21 हजार में से 7584 शहरी बुजुर्ग अशिक्षित पाये गये। सर्वे के दौरान 47.4 प्रतिशत बुजुर्गों ने यह स्वीकार किया कि भेदभाव सहना अब उनकी आदत बन गयी है। इतना ही नहीं 52.35 शहरी और 44.1 ग्रामीण बुजुर्गों ने माना कि विशेष आयोजनों पर उनके साथ अधिकतर बुरा व्यवहार किया जाता है। घर में कोई उत्सव हो और हमें एक कमरे में बंद होना पड़ता है।

उपर्युक्त सर्वे के आंकड़े बुजुर्गों की दयनीय हालत को व्यक्त करते हैं। आखिर आज की युवापीढ़ी को क्या हो गया है? जिस मां ने नौ माह अपनी कोख में रखकर उसके वजूद का कारण बनी है वह भला कैसे अपनी बूढ़ी मां को फटकार सकता है। जिस पिता ने पढ़ा-लिखाकर उसे आज इस काबिल बनाया कि वह मां-बाप के बूढ़ेपन का सहारा बन सके वह कैसे अपने मां-बाप की उपेक्षा कर सकता है? ऐसे प्रश्नों पर चिंतन करते हुए प्रत्येक संतान को इस बारे में भी सोचना चाहिए कि जैसी करनी

एकल परिवार में बुजुर्गों की देखभाल के लिए किसी के पास अवकाश नहीं। बेटे और बहू दोनों के कामकाजी होने के कारण वृद्धावस्था में भी उन्हें घर के छोटे-छोटे कामकाज निपटाने पड़ते हैं। ऐसा करने के बावजूद भी यदि बहू के दंशभरे शब्द `बाबूजी या अम्माजी दिनभर पलंग तोड़ते हैं, एक छोटा सा काम नहीं कर सकते' सुनने पड़ें तो उनकी मन:स्थिति का सहज आभास लगाया जा सकता है।

वैसी भरनी अर्थात यदि हम अपने बूढ़े मां-बाप की सेवा नहीं करेंगे तो एक दिन इस वृद्धावस्था के दौर से हमें भी गुजरना पड़ेगा तो हमारी सेवा कौन करेगा। सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा 'ओल्ड केयरिंग होम' के रूप में पूरे देश में व्यवस्था की गयी है। ये व्यवस्थाएं या तो मजबूरी में की गयी हैं या व्यवसाय के रूप में की गयी है। सेवाभावना के अभाव के कारण इन संस्थाओं का औचित्य भी समझ से परे है। जीवनपर्यंत कार्य करने वाले व्यक्ति वृद्धावस्था में सेवा भावना की अपेक्षा रखते हैं, किन्तु इन संस्थाओं में बुजुर्गों के रहने की दशा, पहनने के कपड़े और खाने के लिए रोटी की व्यवस्था कर ये संस्थाएं अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेती है। स्थिति तब और दयनीय हो जाती है जब इकलौता बेटा मां-बाप के समक्ष अपनी अक्षमता जाहिर करते हुए ऐसे 'होम' में माता-पिता को रखने का प्रस्ताव रखता है और यदि दो बेटे हैं तो एक मां को और एक पिता को रखने का प्रस्ताव रखता है। कुफ्र होता है कि कई संतानों का पालन-पोषण करने वाले मां-बाप की सेवा और सहारा बनने के लिए जब कोई संतान आगे नहीं आती और आती भी है तो उन्हें बांटकर अर्थात् अलग-अलग करने को आती है।

एकल परिवार में भी बुजुर्गों को सम्मान मिले, उन पर किसी प्रकार का अत्याचार न हो, एतदर्थ निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

- सरकारी स्तर पर बुजुर्गों के मानवाधिकार की रक्षा की व्यवस्था हो।
- 'ओल्ड केयरिंग होम' में उन्हीं को रखा जाए जिन बुजुर्गों के कोई संतान न हो।
- बुजुर्गों की सेवा-सुश्रुषा के लिए संतानों को पाबंद किया जाना चाहिए।
- बुजुर्गों को भी चाहिए कि वे अपना सर्वस्व संतानों को देकर अपने हाथ-पैर न काटे। यदि उनके पास पूंजी रहती है तो उनकी सेवा होती है, ऐसा प्राय: देखा जाता है।
- संतानों को बुजुर्गों के प्रति अपने दायित्व का बोध होना चाहिए। यदि कहीं नहीं होता है तो जागरूक समाज को यह बोध कराना चाहिए अन्यथा सरकार को बोध कराना चाहिए।
- संतानों को 'जैसी करनी वैसी भरनी' का भी आभास कराना चाहिए।
- बुजुर्गों को भी चाहिए कि जीवनपर्यंत अपने पर बुढ़ापा हावी न होने दें। ऐसा तभी हो सकता है जब वे किसी काम में अपना मन लगाकर अपनी सक्रियता बनाये रखेंगे।
- रिटायरमेंट का मतलब एक सेवा से रिटायर होना न कि कार्य से रिटायर होना चाहिए।
- परिवार में पीढ़ी का अंतराल प्रभावी न हो एतदर्थ बुजुर्गों को भी चाहिए कि वे अपनी संतानों के कार्यों में अनावश्यक दखलन्दाजी न करें।
- अस्तु संतानें बुजुर्गों के प्रति अपने दायित्व को समझे और बुजुर्ग संतानों के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप न करें तो एकल परिवार भी स्वर्ग का रूप ले सकता है।

-निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय
लाडनूं-341306 (राजस्थान)

मंत्र की शक्ति

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे

प्रतिदिन लोग नहाते-धोते हैं, पूजा करते हैं, भोजन से पूर्व या किसी शुभ कार्य को आरंभ करने से पहले मंत्र पाठ करते हैं। यह मंत्र-पाठ कुछ लोग सुनकर और कुछ पुस्तकों से पढ़कर याद कर लेते हैं। वे मंत्र-पाठ कितने शुद्ध होते हैं यह प्राय: लोगों को पता नहीं होता। कुछ व्यावसायिक पंडित तो हवन, कथा-पूजा आदि के समय बेधड़क होकर अशुद्ध मंत्र-पाठ करते हैं और श्रोता, उन मंत्रों की शुद्धता से अनभिज्ञ होने के कारण पूरी तन्मयता से उन्हें सुनते हैं। जो मंत्रों के शुद्ध पाठ से परिचित हैं, उनके कानों में अशुद्ध मंत्र-पाठ या कोई श्लोक आदि का भ्रष्ट उच्चारण, गर्म तेल की भांति कष्ट पहुंचाता है। यह मानते हुए भी ऐसे अशुद्ध मंत्र-पाठ से कोई उपलब्धि नहीं होती-कोई हवन-पूजा सार्थक नहीं होती।

एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस से किसी भक्त ने पूछा था-'स्वामीजी मंत्र में क्या वास्तव में शक्ति होती है। अगर कोई आदमी किसी से मंत्र सुनकर या पुस्तक में पढ़कर मंत्र रट कर उसका पाठ करने लगे तो क्या उन मंत्रों से हमारा अभीष्ट फल मिलेगा?' स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा-'इस तरह कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। मंत्र तो तब प्रभावशाली होता है, जब उसे कोई ज्ञाता और आधिकारिक व्यक्ति पढ़ता है। उन मंत्रों में प्रभाव तभी आता है, जब उनका शुद्ध पाठ हो।' रामकृष्ण परमहंस ने एक कथा सुनाई-'एक राजा का महामंत्री प्रात:कालीन पूजा और जाप कर रहा था, अचानक वहां राजा आ गया। महामंत्री को मंत्र-जाप करते देखकर रुक गया। महामंत्री पूजा से निवृत्त हुए तो सीधे राजा के पास आए। राजा ने पूछा, 'आप किस मंत्र का जाप कर रहे थे?' 'मैं गायत्री-मंत्र का जाप कर रहा था।' राजा ने कहा, 'हमें भी यह मंत्र सिखा दो।'

महामंत्री ने मंत्र सिखाने में असमर्थता प्रकट कर दी। राजा चिढ़ गया। अगले ही दिन उसने एक पंडित को पकड़ बुलवाया और उससे गायत्री मंत्र सीख लिया। फिर राजा ने महामंत्री के सामने मंत्र-पाठ करके पूछा-'ये बताओ कि यह शुद्ध है कि नहीं?' महामंत्री ने कहा-'मंत्र के शब्द तो वही हैं, पर उनके पाठ में वह गुण और प्रभाव नहीं है, जो अभीष्ट फल दे।' राजा को आश्चर्य हुआ और उसने महामंत्री से कहा कि इस बात को वह दृष्टांत देकर समझाए। महामंत्री ने तब वहां खड़े एक नौकर से कहा-'राजा के गाल पर दो तमाचे जड़ दे।' लेकिन उस नौकर की हिम्मत न पड़ी। राजा को बुरा लगा कि महामंत्री ने एक नौकर से मुझे तमाचे मारने को कहा। राजा ने गुस्से में भरकर उसी नौकर से कहा-'तू महामंत्री के मुंह पर चार तमाचे मार।' और नौकर ने चार तमाचे महामंत्री के मुंह पर जड़ दिए। 'देखा महाराज! यह है मंत्र-शक्ति। वही शब्द मैंने बोले, तो उनका कोई असर न हुआ। आपने कहा तो इस पर असर हो गया और मुझे चार तमाचे मार दिए।

मंत्र में यही शक्ति होती है, जिसे कोई उसका ज्ञाता और पात्र व्यक्ति ही प्रभावशाली रीति से पढ़ सकता है कि अभीष्ट फल प्राप्ति हो।

परख

डॉ. सुश्री शरद सिंह

मन के भीतर है धर्म

धर्म क्या है? यह एक ऐसा प्रश्न है जो प्रत्येक व्यक्ति के मन में कभी-न-कभी अवश्य उठता है। धर्म को समझने, जानने और बूझने के लिए धर्म सभाओं का आयोजन किया जाता है। विद्वान शास्त्रार्थ करते हैं, धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन-परायण किया जाता है। फिर भी, कई बार यह प्रश्न यथावत् रह जाता है कि धर्म क्या है? आज के आधुनिक युग में कई ऐसे लोग मिल जायेंगे जो स्वयं को धार्मिक कहने में संकोच करते हैं, उच्च शिक्षित एवं पाश्चात्य जीवनशैली में जीने वाले लोग प्राय: हंस कर कहते हैं- ''हमें धर्म-कर्म में विश्वास नहीं है।'' क्या वे सच कहते हैं? या फिर वे अपनी अज्ञानता में पड़ कर झूठ बोल रहे होते हैं?

धर्म कोई वस्तु नहीं है जिसे हाथ से छू-टटोल कर जांचा-परखा जा सके। धर्म कोई सुगंध नहीं है जिसे सूंघा जा सके। धर्म कोई तरल नहीं है जिसे पिया जा सके। धर्म कोई पुस्तक नहीं है जिसे पढ़ा जा सके। धर्म कोई दर्पण नहीं है जिसमें स्वयं को देखा जा सके। फिर धर्म क्या है? एक बार ऋषि कौस्तुभ से उनके एक शिष्य ने प्रश्न किया- ''ऋषिवर! आप मुझे सदैव यही शिक्षा देते रहते हैं कि मुझे धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिए। कृपया मुझे बतायें कि धर्म क्या है और क्यों मुझे उसके अनुसार आचरण करना चाहिए?''

ऋषि कौस्तुभ ने अपने शिष्य के प्रश्न को ध्यान से सुना और कहा-''वत्स, तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं तुम्हें बाद में बताऊंगा। पहले तुम नगर में जाकर दिनभर भिक्षाटन करो और गोधूलि बेला में मुझसे मिलो।''

शिष्य ऋषि की आज्ञा का पालन करने निकल पड़ा। दिनभर भिक्षाटन करता रहा और शाम को आश्रम लौट कर सीधे ऋषि कौस्तुभ के पास पहुंचा।

''ऋषिवर! अब आप मुझे बतायें कि धर्म क्या है?'' शिष्य ने पुन: प्रश्न किया।

''ठीक है बताता हूं, लेकिन पहले तुम मुझे अपने दिनभर के अनुभव बताओ।'' ऋषि कौस्तुभ ने आदेश दिया तो शिष्य ने अपना अनुभव बताना शुरू किया- ''मैं आज सबसे पहले एक सेठ के द्वार पर पहुंचा। उसने मेरा स्वागत-सत्कार किया और मुझे स्वर्ण मुद्राएं दान में दी। यदि कोई और दिन होता तो मैं वे सौ स्वर्ण मुद्राएं लेकर आश्रम लौट आता, किन्तु आज आपने मुझे शाम तक भिक्षाटन करने का आदेश दिया था। अत: मैं आगे बढ़ा। कुछ दूर चलने पर मुझे एक भिखारी मिला जो अत्यंत जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था तथा कई दिनों से भूखा था। उसकी दशा को देखकर मैंने उसे सौ में से पचास स्वर्ण मुद्राएं दे दीं। फिर, मैं आगे बढ़ा। आगे मुझे एक और भिखारी मिला। उसकी दशा अधिक खराब तो नहीं थी, किन्तु वह दो दिनों से भूखा अवश्य था। अत:, मैंने उसे बची हुई पचास मुद्राओं में से बीस स्वर्ण मुद्राएं दे दीं। उसके बाद मैं आगे बढ़ा तो एक अच्छा-भला, खाता-पिता आदमी मुझे मिला। उसने मुझसे कहा कि मैं अपना बटुआ घर भूल आया हूं और खाली हाथ घूमना अच्छा नहीं लग रहा है। अत: आप कुछ स्वर्ण मुद्राएं दें। बदले में मैं आपको तिगुनी स्वर्ण मुद्राएं दूंगा। ऋषिवर, मुझे उसकी यह बात भली नहीं लगी। मैं भिक्षाटन पर निकला था, व्यापार करने नहीं, मैंने स्वर्ण मुद्राएं देने से मना कर दिया। इसके बाद मैं कुछ देर और घूमता रहा। तब तक शाम हो गई और मैं वापस आश्रम आ गया। ये रहीं शेष तीस स्वर्ण मुद्राएं। अब आप मुझे बताएं कि धर्म क्या है?''

शिष्य ने अपनी दिनचर्या सुनाने के बाद फिर प्रश्न किया।

''सुनो! धर्म वह है जो तुमने परहित का ध्यान रखते हुए दोनों भिखारियों को स्वर्ण मुद्राएं दान में दे दीं। वह भी धर्म है जो तुमने दूसरे दिन तिगुनी स्वर्ण मुद्राएं मिलने का लालच छोड़ कर ऐसे व्यक्ति को स्वर्ण मुद्राएं देने से मना कर दिया जो मात्र दिखावे के लिए मुद्राएं चाहता था।'' ऋषि कौस्तुभ ने शिष्य को समझाया।

''किन्तु, यह तो मैंने अपने मन और विवेक के अनुसार किया, इसमें धर्म कहां है?'' शिष्य ने पुन: प्रश्न किया।

''मन और विवेक ही तो धर्म को जन्म देते हैं। मन में विचार उत्पन्न होते हैं। सद्विचार जिस कार्य को करने के लिए प्रेरित करते हैं वह कार्य होता है। धर्म कोई बाह्य वस्तु नहीं अपितु आंतरिक भावना है।'' ऋषि कौस्तुभ ने उत्तर दिया।

ऋषि का उत्तर सुनकर शिष्य संतुष्ट हो गया, वह समझ गया कि धर्म सद्विचारों से प्रेरित आचरण है, जिस प्रकार ऋषि कौस्तुभ का शिष्य धर्मानुसार आचरण करते हुए भी भ्रमित था ठीक उसी प्रकार वर्तमान समय में लोग धर्म के स्वरूप को लेकर भ्रमित हैं। वे जानते हैं कि धर्म क्या है, किन्तु फिर भी उसे न जानने का भ्रम पाले हुए हैं, 'धर्म' का सीधा संबंध मानव कर्तव्य तथा पुरुषार्थ से है। भगवद्गीता, मनुस्मृति तथा हितोपदेश में 'धर्म' शब्द का अर्थ 'कर्म' कहा गया है। धर्म के संबंध में 'गीता' में कहा गया है कि भय का अभाव, अंत:करण की शुद्धता, ज्ञान के लिए योग में दृढ़ स्थिति, सात्विक दान, इंद्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, हर स्थिति में कर्तव्य पालन तथा शरीर, मन एवं वाणी की सरलता ही धर्म है।

गीता में धर्म की अन्य व्याख्या भी मिलती है। अहिंसा, सत्यभाषण, क्रोध न करना, सांसारिक कामनाओं का त्याग, अंत:करण को राग-द्वेष से मुक्त रखना, प्राणियों पर दया करना, मन की कोमलता तथा कुकुर्म करने में लज्जा का भाव रखना धर्म है।

वस्तुत:, सर्वोत्तम धर्म वह है जो परमानंद प्रदान करे, यह परमानंद भौतिक नहीं, आत्मिक होना चाहिए।

धर्म को जीवन में अनुशासन लाने वाला तत्व मानते हुए जैन धर्म में अणुव्रतों का पालन करने का आग्रह किया जाता है, जैन-गृहस्थ अनुयायियों के लिए पांच अणुव्रतों का पालन अनिवार्य कहा गया। ये अणुव्रत हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय (बिना अनुमति के दूसरों की कोई वस्तु लेना), ब्रह्मचर्य और परिग्रह (आवश्यकता से अधिक संग्रह करना)।

इसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी धर्म का मूल अनुशासित जीवन शैली को माना गया है। बौद्ध धर्म में पांच नैतिक नियमों का प्रतिपादन किया गया है। ये नियम हैं-

(1) किसी प्राणी का वध नहीं करना चाहिए।
(2) चोरी नहीं करनी चाहिए।
(3) झूठ नहीं बोलना चाहिए।
(4) मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।
(5) व्यभिचार से दूर रहना चाहिए।

अत:, आज धर्म को विभिन्न नामों से भ्रमित होकर देखने के स्थान पर धर्म के मूल को देखना-परखना चाहिए। वस्तुत:, सभी धर्मों के मूल विचार एक ही हैं। आज धर्म का पालन करने का सबसे सही तरीका है समस्त प्राणियों की रक्षा की जाए, मानवाधिकार की रक्षा की जाये, पर्यावरण की रक्षा की जाए। धर्म को फिर चाहे जिस नाम से पुकारा या स्वीकार किया जाए, मूलत: वह एक सच्चा धर्म ही कहलायेगा। ■

विवेचन

विपिन जैन

कैसा होना चाहिए हंसना

प्राणियों में केवल हंसना ही ऐसी कुदरती वरदान है जो मानव को ही मिला है। मानव का मूल प्रकृतियों में से एक हंसना और वह भी ठहाके लगाकर हंसना तन और मन के लिए एक अच्छा व्यायाम भी माना जाता है। अंग्रेजी की कहावत भी बन गयी है 'लाफटर इज दा बेस्ट मेडिसिन।' पर हंसना हमारी भाग-दौड़ और तनाव भरी जिंदगी से धीरे-धीरे गायब हो रहा है। कहां है? वो हंसी की महफिलें, चौपालें, गप्प गोष्ठियां और यारों की, परिवारों की सम्मिलित हंसी ठट्ठे की बैठकें। हंसी-खुशी बांटने के लिए हमारे त्यौहार, उत्सव हैं पर हमारी हंसी थोथी, बनावटी और ओढ़ी हुई होती जा रही है क्योंकि विशुद्ध हंसी के लिए मन साफ होना चाहिए और हमारे मन में निरंतर कुछ न कुछ उधेड़-बुन चलती रहती है हमारे शरीर में मौजूद जीन भी एक हद तक इसके लिए जिम्मेदार है। यूं परिस्थितियां, कैरियर, स्वभाव और कई बाह्य स्थितियां भी हमें हंसने से दूर किये रहते हैं पर कठिन से कठिन परिस्थिति में हंस लेना दिल-जगर से मजबूत मानुष के हिस्से ही आता है।

हंसना सिर्फ बत्तीसी बाहर निकालकर हंसी के फव्वारे छोड़ना भर नहीं हैं, हंसी ऐसी होनी चाहिए जिससे किसी का दिल न दुखे, आपके हंसने में दूसरा भी भाग ले।

डॉ. गुडमैन से खुलकर हंसने वाले का डॉक्टरी बिल न के बराबर आने की बात कही है। अब बहुत से शहरों में लाफटर क्लब भी स्थापित हो गये हैं जिसमें लोग सुबह के समय किसी पार्क में इकट्ठा होकर जोर-जोर से हंसते हैं। लोग इनकी हंसी की आवाजों पर हंसते हैं। हंसना योग का भी एक अंग है। हंसना सबका अपना-अपना है। हंसी के साथ यूं तो कोई भी हंस देता है। परन्तु हंसना जितना आसान लगता है उतना हंसी का बाहर निकालना भी मुश्किल होता है। हंसने की अदा, अंदाज आदमी के व्यक्तित्व को खोलकर सामने रख देते हैं कोई शालीनता से धीरे-धीरे हंसता है। किसी को हंसी बेआवाज गले और पेट के बीच ही घूमकर थम जाती है। कोई हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाता है। कुछ गर्दन पीछे लटका लेते हैं। जैसे आसमान से ही हंसी की इजाजत मांग रहे हो, कुछ हाथ पांव पटकने लगते हैं। कुछ होठ दबाकर हंसी का हलवा घोटते हैं, कुछ अजीब तरह से हंसकर स्पेशल इफैक्ट पैदा करने की कोशिश करते हैं।

हंसना सिर्फ बत्तीसी बाहर निकालकर हंसी के फव्वारे छोड़ना भर नहीं हैं, हंसी ऐसी होनी चाहिए जिससे किसी का दिल न दुखे, आपके हंसने में दूसरा भी भाग ले।

हंसी से शरीर के ऊर्जा चैनल खुलते हैं। ठहाके लगाने से चेहरे और शरीर की मांसपेशियां सक्रिय हो जाती हैं। सीने और पेट के स्नायु तंत्र मजबूत होते हैं। शरीर में रक्त संचार तेज होता है तथा ऐसे रासायनिक तत्व पैदा होते हैं जिनसे सकारात्मक सोच बनती है। उदासी, तनाव, उब, अवसाद, सिरदर्द, वात रोग भगाने की यह सिद्ध औषधि है। कुंठाएं दूर होती हैं और स्वस्थ दिशा में आदमी की सोच मुड़ती है। हंसना या किसी बात पर गद-गद होना एक आंतरिक प्रक्रिया है। लोग हंसने के बहाने जूझते हैं। हंसी से भरे दृष्टिकोण से बहुत सी स्थितियां सहज हो जाती हैं। अपने पर हंसना जिन्दादिली है। यह आत्मतुष्टि भी है। दूसरों की कमियों पर हंसना हंसी का सामान्य रूप है। कुछ विचारकों का मत है कि हंसी एक सुखद अनुभव है और इसके आगे-पीछे कुछ भी नहीं है। हंसी आये तो सिर्फ हंसो, इनके कारणों को मत सोचो। हमारी हंसी स्वच्छ झरने सी होनी चाहिए। ओशो का मत है- ''हंसने के लिए मौका और माहौल जरूरी नहीं है। हंसी अपने अंदर उत्पन्न करो, अपने अंदर खोजो, महसूस करो, अनुभव करो। उन घटनाओं के बारे में सोचो जब आपका हंसी से वास्ता पड़ा था। तब देखोगे शरीर रोमांचित हो उठेगा। हंसी की तरंगें दिल में हिलोरे लेने लगेंगी। तब तुम अपने में खोकर हंसी को करीब से और अलग अनुभव करोगे। हल्कापन महसूस करोगे।'' हंसी बुढ़ापे को दूर रखती है अगर आज आदमी के पास धन दौलत तो बढ़ रही है पर उसके चेहरे की हंसी गायब हो रही है। वो सेन्स ऑफ ह्यूमर नहीं रहा जो हमारे दुष्ट भावों को मिटाता है।

काफी समय पहले सफल फिल्म मुन्नाभाई एमबीबीएस आई थी इसमें अभिनेता संजय दत्त मरीजों में हंसी-खुशी की लहरें फैलाकर ही जल्द ठीक हो जाने का एहसास भरता है। अकेले में हंसने से और किसी पर हंसने की बजाय हमें सबके साथ हंसना सीखना चाहिए। इससे सामूहिक भावना बढ़ेगी। तनाव घटेगा और कार्यक्षमता में वृद्धि होगी। बहुत से बॉस अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से हंसी-हंसी में कठिन कार्य करा लेते हैं। एक खुशमिजाज बॉस कार्य को बोझ नहीं बनने देता, हमारे पास अच्छे चुटकुलें हों, संस्मरण हों, बातें हों, व्यंग्योक्ति हों, संवाद हों। हंसी का आनंद तभी है जब सुनने वाला भी मनोयोग से उसमें हिस्सा लें। एक खेल की तरह हंसी की बोल फेंकी जाये और लपकी जायें और फिर इसका उलट हो। हंसी की भाषा शब्द कम और चुप्पी ज्यादा मांगती है। इसलिए हंसने और हंसाने को कला कहा गया है। यह सच है कि यह कला सबको नहीं आती और कुछ इसमें पारंगत होते हैं।

हंसी निशस्त्र लड़ने का एक तरीका भी है। हास्य की कविताओं के माध्यम से कवियों ने सामयिक स्थितियों, सामाजिक बुराइयों, विसंगतियों, भ्रष्टाचारी प्रवृत्तियों, घोटालों और सत्ताधारियों की कमियों पर प्रहार किये हैं। कॉमेडियन हंसी-हंसी में जीवन दर्शन और सच्चाई की बातें अपने हाव-भाव और एक्शन से कह देता है। संबंधों में भी हंसी की अहमियत कम नहीं है। घर के तनावपूर्ण किसी मसले में अगर हंसी बिखर जाये तो समझो बात निपट गयी है। कुछ देर के लिए ही सही कड़वाहट घुल जाती है।

–के. आई.-147, कविनगर
गाजियाबाद (उ.प्र.)

महिमा

राजीव मिश्र

आध्यात्मिक गौरव की प्रतीक है भारतीय संस्कृति

आज भारत एवं संपूर्ण विश्व में मात्र उथल-पुथल, हिंसा, भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि से मुक्ति का एकमेव मार्ग यही है कि समाज में ऐसे व्यक्तियों का निर्माण हो, जिनका आंतरिक व्यक्तित्व सुव्यवस्थित हो तथा जो आध्यात्मिक अधिष्ठान पर खड़े हों। अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा गीता का उपदेश ऐसी ही परिस्थितियों में दिया गया था जब वह बाह्य संघर्ष के उपस्थित होने पर अपने आंतरिक संघर्ष में उलझ गये थे। भगवान ने उनके आंतरिक संघर्ष के समाधान के माध्यम से बाह्य संघर्ष के लिए तैयार किया। जब-जब हमारे समाज में इस ज्ञान का संकोच होता है तब-तब सामाजिक अव्यवस्थाओं में वृद्धि होती है।

जब जीवन में सारे रास्ते बंद दिखाई देते हैं, कहीं से कोई सहायता मिलती नहीं दीखती तब मनुष्य किसी ऐसी शक्ति का सहारा लेना चाहता है जो सर्व समर्थ हो। परमात्मा के अतिरिक्त ऐसा भला कौन है जिसकी वह शरण ग्रहण करे? व्यक्ति कभी ठोकर खाकर गिर पड़ता है तो उसी जमीन का हाथ से सहारा लेकर खड़ा होता है जिस पर वह गिरा था। अब देखिये सुनामी के प्रलय से कितने लोग बर्बाद हुए तो क्या उन्होंने (मनुष्यों ने) पानी पीना छोड़ दिया। भूकम्प के परिणामस्वरूप जो धरती घरों और नगरों को नष्ट कर देती हैं, क्या उसी धरती पर मनुष्य फिर से अपने घर और नगर नहीं बनाते? आश्रयहीन और बेसहारा व्यक्ति को शरण देने वाला एकमात्र परमात्मा ही है। जो इस बात को जान लेता है, वह भगवान को मानने लगता है, पूजा करने लगता है।

भक्त किसे कहा जाता है और वह क्यों पूजा करता है? जब कोई व्यक्ति अपनी सीमित क्षमताओं से भली-भांति परिचित होता है, स्वयं के अल्पत्व को समझता है और भगवान की असीम महिमा को अनुभव करता है तो वह आश्चर्यचकित हो जाता है और उसके मन में ऐसी अनंत शक्ति संपन्न सत्ता के प्रति आदर उत्पन्न होता है। वह ऐसे अनंत सामर्थ्य वाले परमात्मा की भक्ति स्वत: करने को विवश हो जाता है क्योंकि वह देखता है कि उसके पास जो कुछ भी है वह सब परमात्मा का ही दिया हुआ है।

भक्ति निश्चय ही मन का वैयक्तिक भाव है। इसलिए इसे व्यक्तिगत विषय माना जा सकता है। परन्तु कुछ अपवादों को छोड़कर, गृहस्थ आश्रम में रहते हुए, भक्त के लिए अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना आवश्यक है। इस मान्यता के प्रमाण स्वरूप भागवत में अनेक सूत्र उपलब्ध हैं। यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें, तो जिस प्रकार क्रोध की अवस्था में व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है, उसी प्रकार मन में श्रीकृष्ण के प्रति वास्तविक भक्तिभाव उदय होने एवं सर्वत्र प्राणियों एवं

प्रकृति में कृष्ण की अनुभूति होने पर व्यक्ति के व्यवहार में वांछित परिवर्तन होने लगना आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति में एक बड़ी सुंदर बात कही जाती है ''कृपा करके हमारी भूल-चूक माफ करना।'' अतिथि को विदा करते समय ऐसा कहने का चलन है। भूल करना मनुष्य का स्वभाव है, क्षमा करना भगवान का स्वभाव है। कितने ही परिश्रम से, कितने ही मन से व्यक्ति काम करें, उनसे गलतियां हो ही जाती हैं। अपनी भूलों को समझने और उन्हें स्वीकार करने के लिए व्यक्ति को बहुत सावधान रहना चाहिए, पश्चात्ताप करना चाहिए, क्षमा याचना करना आना चाहिए। संकल्प करना चाहिए कि वह ऐसी भूलें न दोहरायें और की हुई भूल को सुधारने के लिए प्रयत्न करें।

आज अपने अज्ञान में मनुष्य यह समझ बैठा है कि वह एक परिछिन्न जीव है जो परिस्थितियों द्वारा प्रताड़ित होता रहता है और अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं के मध्य निष्ठुरतापूर्वक उछाला जाता है। उसे इस परिछिन्नता से मुक्त कर अपने आध्यात्मिक गौरव का भान कर देना ही भारतीय संस्कृति का मौलिक कार्य है। देश हो या विदेश, उसे (भारतीय संस्कृति) सर्वत्र यही काम करना है।

-245-बी, बाघम्बरी हाउसिंग स्कीम
इलाहाबाद-211006 (उ.प्र.)

आत्मदर्शन है स्वयं को देखना

आचार्य श्री महाश्रमण

एक सुंदर सूक्त है जैन वाङ्मय का-'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं' स्वयं स्वयं को देखें। प्रेक्षाध्यान का यह एक आधारभूत सूत्र है कि अपने आपको देखें। आदमी की आंखें बाहर देखती हैं। वह भीतर में भी देखने का अभ्यास करे। भीतर की ओर देखने का मतलब है-स्वयं को देखना, आत्म-साक्षात्कार करने की दिशा में आगे बढ़ना। जो व्यक्ति स्वयं का विश्लेषण करता है, स्वयं की अच्छाइयों और कमियों को देखता है और फिर अच्छाइयों को बढ़ाने का और कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से भी आगे बढ़ सकता है और व्यावहारिक दृष्टि से भी आगे बढ़ सकता है, प्रगति कर सकता है। स्वयं को देखते-देखते व्यक्ति आत्मा तक पहुंच सके, यह आध्यात्मिक आकांक्षा होती है। अनेक धार्मिक लोगों में आत्मदर्शन की भावना होती है।

प्रश्न हो सकता है कि आत्मा को कौन देख सकता है? संस्कृत साहित्य में एक सुंदर श्लोक मिलता है-

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत् तत्त्वं नेतरो जनः॥

जिस आदमी का मनरूपी जल राग-द्वेष की तरंगों से तरंगित नहीं होता है, वही व्यक्ति आत्मतत्व को देख सकता है। राग-द्वेष युक्त व्यक्ति आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। एक व्यक्ति पानी से भरे तालाब के भीतरी भाग अंतस्तल को देखना चाहता है। परन्तु तालाब का पानी यदि तरंगित है तो तालाब का भीतरी भाग देखना कठिन और असंभव-सा हो जाता है। तालाब में लहरें न भी उठें किन्तु पानी गंदा हो तो भी तालाब का भीतरी भाग नहीं देखा जा सकता। तालाब का अंतःस्तल तभी देखा जा सकता है जब पानी अतरंगित हो और साथ में स्वच्छ भी हो।

एक आदमी दर्पण में अपना चेहरा देखना चाहता है परन्तु दर्पण हिल रहा है तो चेहरा देखने में कठिनाई हो सकती है। यदि दर्पण स्थिर है किन्तु गंदा है, अंधा है, दर्पण के ऊपर आवरण है अथवा देखने वाला अचक्षु हो तो भी चेहरा नहीं देखा जा सकता।।

जिस आदमी के पास स्वयं की प्रज्ञा नहीं है, शास्त्र उसका क्या भला करेगा? जैसे अचक्षु आदमी दर्पण के सामने खड़ा हो, फिर भी वह क्या देख पाएगा? आदमी चक्षुष्मान हो, दर्पण स्थिर हो, स्वच्छ हो और अनावृत्त हो तो चेहरा देखा जा सकता है। आदमी का मन भी अनेक अवस्थाओं वाला है। उसमें विभिन्न भाव उभरते रहते हैं। वह कभी व्यग्र बन जाता है तो कभी एकाग्र भी बन जाता है। व्यग्र मन वह होता है, जो विभिन्न आलम्बनों पर घूमता रहता है और एकाग्र मन वह होता है, जो एक बिन्दु पर अथवा एक आलम्बन पर स्थिर हो जाता है। इसके बाद तीसरी अवस्था है मनोतीत। इसमें आदमी मन से भी आगे चला जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता में जैसा कहा गया है-

इन्द्रियाणि पराण्याहु, इन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनस्तु परा बुद्धिः, यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

इन्द्रियां पर हैं, इन्द्रियों से आगे मन है, मन से आगे बुद्धि है और बुद्धि से भी आगे जो है वह आत्मा है, परमतत्त्व है। आदमी में उस परमतत्त्व के साक्षात्कार की आकांक्षा रहती है। किन्तु जब तक राग-द्वेष के भाव विघटित नहीं होते हैं, आत्मा का दर्शन नहीं किया जा सकता।

आत्म-दर्शन करना एक सरल मार्ग भी है और कठिन मार्ग भी है। सरल मार्ग इसलिए है कि राग-द्वेष के छूटते ही आत्म-साक्षात्कार हो जाता है और कठिन मार्ग इसलिए है कि राग-द्वेष को छोड़ना आसान काम नहीं है। आत्मा को पाने के लिए बहुत तपना पड़ता है, खपना होता है, साधना करनी होती है और मन को इतना पवित्र बनाना होता है कि अमन की अवस्था प्राप्त हो जाए।

आत्मा को देखना बहुत ऊँची बात है। आत्मदर्शन से पहले आदमी इतना-सा प्रयास करे कि पहले अपनी कमियों को देखना शुरू करे। जो आरोपण दूसरों पर किया जाता है वह यदि स्वयं पर किया जाए तो समाधान का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। आदमी को विकास करना है तो स्वयं की कमियों को देखना होगा और उन्हें अनुभव कर दूर करने का प्रयास करना होगा। यह भी एक प्रकार का स्वयं का दर्शन है। गुरुदेव तुलसी और आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने आत्मदर्शन के लिए एक ध्यान की विधि निर्दिशित की, वह है प्रेक्षाध्यान। ध्यान के द्वारा आदमी चंचलता से स्थिरता की ओर आगे बढ़ता है। बाहर से भीतर की ओर बढ़ता है। प्रवृत्ति से निवृत्ति में आता है। भोग से योग की ओर अग्रसर होता है। अंधकार से प्रकाश की ओर प्रस्थान करता है। अनेक लोग ध्यान के अभ्यास के द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान प्राप्त करते हैं। शारीरिक और मानसिक समस्याओं से मुक्ति पाते हैं और अध्यात्म की दिशा में प्रवर्द्धमान बनते हैं।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ का एक सूक्त है-'रहो भीतर जीओ बाहर'। आदमी बाहर जीता है क्योंकि व्यवहार को निभाना है किन्तु बाहर के व्यवहार को निभाते हुए भी आदमी भीतर में रहना सीखे। जो कुछ हो रहा है उसे देखना सीखे, ज्ञाता-द्रष्टा भाव विकसित करे। एक व्यक्ति आसक्ति के साथ पदार्थों का भोग करता है और दूसरा व्यक्ति आवश्यकता की पूर्ति के लिए पदार्थों का उपयोग करता है। आदमी अनासक्ति के साथ पदार्थों का उपयोग करे, ज्ञाता-द्रष्टा भाव का विकास करे, मन को पवित्र बनाए और राग-द्वेष मुक्त जीवन जीने का प्रयास करे तो अपने आपको देखने की बात निष्पन्न हो सकती है।

आर. जे. मौर्य

भावी बच्चे कैसे बनें अच्छे ?

भावी बच्चे कैसे बनें अच्छे? यह लेख लिखने का मेरा उद्देश्य है- नई पीढ़ी, नयी चेतना की सर्जना करना। शिक्षा के साथ-साथ बच्चों के चरित्र निर्माण पर जोर देना, उन्हें एक सच्चा इंसान बनाना। यह कैसे संभव हो सकता है? इसका सबसे अच्छा और कारगर उपाय है- माताएं अपने बच्चों को बचपन से ही संस्कार में प्रशिक्षित करें, सत्य और अहिंसा के पथ पर चलना सिखाएं। उन्हें आज्ञाकारी, कर्तव्यनिष्ठ और अनुशासित नागरिक बनाएं। परन्तु अफसोस है कि अधिकांश माताएं इस ओर प्राय: अधिक ध्यान नहीं देतीं। शिक्षित माता-पिता हों या अशिक्षित सभी लोग कॉलेज की डिग्री को अधिक महत्व देते हैं क्योंकि डिग्री से ही रोजगार मिल सकता है। रोजगार और पद पाकर भले ही लोग बेईमानी, भ्रष्टाचार, कामचोरी और अपराध करें। राष्ट्र को लूट लें। आज पारिवारिक जीवन में, सामाजिक जीवन में, प्रशासन और राजनीति में जो भी समस्याएं, तनाव संघर्ष, अशांति, पीड़ा और दु:ख है इसका एकमात्र कारण है- जन-जन का चरित्र गिर जाना और स्वार्थी बन जाना। माता-पिता अपने बच्चों को इंजीनियर, डॉक्टर, आई.ए.एस आदि तो बनाना चाहते हैं। डिग्री दिलाने में लाखों रुपये खर्च करते हैं परन्तु 'मनुष्य निर्माण' में कौड़ी भी नहीं। वे अपने बच्चों को अच्छा इंसान नहीं बनाना चाहते। परन्तु बिना अच्छा इंसान बनें परिवार में, समाज में, प्रशासन में और राजनीति में कोई सुधार या बदलाव नहीं आ सकता।

जो युवक-युवतियां बच्चों को संस्कार देने में कुछ भी कष्ट नहीं उठाना चाहते। बेहतर यही होगा कि वे विवाह तो करें परन्तु नालायक और दुष्ट बच्चे पैदा करके इस धरती को और अधिक बोझिल और कलंकित न करें।

यद्यपि हर माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चों का व्यवहार और चाल-चलन अच्छा हो, वे आज्ञाकारी और सुशील हों, माता-पिता का आदर करने वाले हों परन्तु ऐसा होनहार बालक पाने के लिए स्वयं कोई कष्ट नहीं उठाना चाहते, कोई त्याग नहीं करना चाहते, पहले से कोई तैयारी नहीं करते, न गर्भाधान पीरियड में, न ही प्रसव के बाद बाल्यावस्था और किशोरावस्था में। संपन्न माता-पिता का एकमात्र उद्देश्य होता है- बच्चों को महंगे स्कूलों/कॉलेजों में दाखिला कराना और कोचिंग में डालना। बेचारे गरीब और अशिक्षित माता-पिता को तो अच्छे-बुरे संस्कार का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। सच्चाई यह है कि सिर्फ महंगे स्कूलों में पढ़ाने मात्र से या धन के बल पर बच्चों को अच्छा नहीं बनाया जा सकता। आज शिक्षा का संस्कारी नहीं, व्यावसायीकरण हो गया है। टी.वी. पर या अखबारों में लुभावने विज्ञापन देकर संस्कार और सुविधा देने के नाम पर अभिभावकों का शोषण हो रहा है। प्रवेश के लिए छात्रों की संख्या बढ़ाई जा रही है परन्तु गुणात्मक कोई सुधार नहीं। जबकि संस्कार निर्माण में स्कूल की अपेक्षा मां की भूमि का सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। अत: स्कूलों पर निर्भर न रहकर यदि सभी माताएं इस ओर जाग जाएं और अपनी जिम्मेदारी बच्चों के प्रति निभाने लगें तो यह धरती स्वर्ग बन सकती है। मेरा मानना है कि संसार का भविष्य सिर्फ दो लोगों पर निर्भर करता है। पहला-घर में माता जो बच्चों को जन्म देती है, पालन पोषण करती है, जिसके प्रत्येक क्रियाकलापों की बच्चे नकल करते हैं तथा मां भी अपने बच्चों के गुणों-अवगुणों को जानती-समझती है और दूसरा-घर से बाहर विद्यालय का शिक्षक (गुरु) जो अबोध और अज्ञानी बालक की बुद्धि को प्रखर और जागृत कर विषयवस्तु का ज्ञान देता है। इन दोनों की बेसिक और नैतिक जिम्मेदारी है कि वे बच्चों के दोषों को दूरकर उसे एक अच्छा इंसान बनाएं, अच्छा नागरिक बनाएं। मैं तो यहां तक जोर देना चाहूंगा कि जो युवक-युवतियां बच्चों को संस्कार देने में कुछ भी कष्ट नहीं उठाना चाहते। बेहतर यही होगा कि वे विवाह तो करें परन्तु नालायक और दुष्ट बच्चे पैदा करके इस धरती को और अधिक बोझिल और कलंकित न करें।

आजादी मिलने के 10-20 साल बाद लोकतंत्र के बारे में हमारी अवधारणा यह थी कि हर चुनाव में अधिकांश नेता अशिक्षित या अल्पशिक्षित चुनकर आते हैं जिसके कारण वे प्रशासन चलाना नहीं जानते। इस कारण देश में रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, समाज में अव्यवस्था व्याप्त है। खुशहाली नहीं आ रही है और विकास की रफ्तार धीमी है। परन्तु आज संसद और विधानसभाओं में, मंत्रिमंडल में अनेक ग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएट, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, उद्योगपति आदि चुनकर आ रहे हैं फिर भी रिश्वतखोरी, अव्यवस्था, अन्याय और भ्रष्टाचार कम नहीं हुआ। पढ़े-लिखे उच्च शिक्षित नेता और वरिष्ठ अधिकारी तरह-तरह के करप्सन और अपराध के सागर में डूबे हुए हैं। कानून उनका बाल बांका नहीं कर पा रहा है। पहले से और अधिक चारित्रिक पतन हो गया। हमारी शिक्षा प्रणाली या प्रशासन में कहां खोट है? खोट यह है कि कॉलेज से डिग्री लेकर लोग इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, आईएएस, आदि तो बन जाते हैं परन्तु शिक्षा के साथ संस्कार निर्माण न होने से वे एक घटिया इंसान साबित होते हैं। आये दिन हर क्षेत्र में अरबों-खरबों के महाघोटाले, भ्रष्टाचार और बढ़ता अपराध का आंकड़ा यही प्रमाणित करता है। इसको कम करना है तो एकमात्र उपाय है- बच्चों का संस्कार निर्माण। नये-नये मंदिर-मस्जिद के निर्माण पर हर साल करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं परन्तु मनुष्य-निर्माण पर कुछ भी नहीं। सिर्फ कानून या तकनीकी और मेडिकल की डिग्री मात्र से समाज में बदलाव नहीं लाया जा सकता। आज देश में नाना प्रकार की समस्याएं व्याप्त हैं। परन्तु हर समस्या का समाधान

वेद, उपनिषद, गीता, रामायण की महान शिक्षाएं और हजारों साधु-महात्माओं के उपदेश सब बेमानी हो गए हैं। क्यों नहीं बदल रही है- हमारी चेतना और चरित्र ? क्यों नहीं हम एक अच्छे इंसान बन पा रहे हैं ?

सिर्फ चरित्र-निर्माण में निहित है। आज का स्कूली बालक ही कल का नेता और कलेक्टर बनता है जिसके हाथों में देश की बागडोर होगी। अत: वर्तमान अधिक महत्वपूर्ण है।

आज विज्ञान और तकनीकी प्रगति के कारण हम अंतरिक्ष में छलांग लगा रहे हैं। चांद और मंगल ग्रहों पर बसने की बढ़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं। कम्प्यूटर, इंटरनेट और मोबाइल के आविष्कार से दुनिया छोटी हो गई है। भौगोलिक दूरी मिट गई है परन्तु धरती पर मनुष्य-मनुष्य के बीच, दो दिलों के बीच दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। हम सब बम विस्फोट से आतंकित और असुरक्षित हैं। इतनी भौतिक प्रगति और उपलब्धियों के बावजूद मानव की आंतरिक चेतना और चरित्र में कोई प्रगति नहीं हुई। बाह्य बुद्धि प्रगति करके शिखर पर जा पहुंचती है परन्तु हमारी निम्न चेतना नीचे कीचड़ में ही लोट-पोट करती रहती है। हम क्रोध, कामना, स्वार्थ और हिंसा के आज भी शिकार हैं। दिन दहाड़े हत्या कर रहे हैं, बैंक लूट रहे हैं, चोरी कर रहे हैं, अपहरण कर रहे हैं, जानलेवा मिलावट कर रहे हैं। यह सब कौन कर रहा है- पढ़े-लिखे चालाक इंसान।

वेद, उपनिषद, गीता, रामायण की महान शिक्षाएं और हजारों साधु-महात्माओं के उपदेश सब बेमानी हो गए हैं। क्यों नहीं बदल रही है- हमारी चेतना और चरित्र? क्यों नहीं हम एक अच्छे इंसान बन पा रहे हैं? इसलिए कि भावी बच्चों को बचपन से अच्छा संस्कार नहीं दिया गया न घर में और न विद्यालय में। टी.वी. चैनल, अश्लील और आपराधिक फिल्में, अश्लील साहित्य जलती आग में घी डालने का कार्य कर रहे हैं। बच्चों को बिगाड़ने का काम कर रहे हैं। फिर भावी बच्चे कैसे बनें अच्छे? जिस नारी को भारत में कभी संस्कार की जननी के रूप में पूजा गया, आज वही नारी यानी फिल्मी युवतियां चंद पैसों के लिए सारी मर्यादाओं को लांघ कर अश्लील नृत्य परोस कर युवापीढ़ी को बिगाड़ रही हैं- कला और मनोरंजन के नाम पर। कैसे सुधार हो? जन-जन को सोचना होगा?

बच्चों के संस्कार बिगाड़ने का सबसे बड़ा दुश्मन 'टी.वी.' घर-घर में बैठा है। अबोध और अज्ञानी बच्चे फिल्म और टी.वीं की ओर जल्दी आकृष्ट होते हैं। उन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं होता। जो दृश्य वे परदे में देखते हैं, और काल्पनिक कहानियां सुनते हैं, वे उसकी नकल असली जीवन में करने की कोशिश करते हैं। समझदार और जागरूक माता-पिता को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि अपरिपक्व बच्चे फिल्म और टी.वी. पर क्या देखें और क्या न देखें। इसी प्रकार कई अबोध बच्चे दूसरों की देखा-देखी धूम्रपान करना, शराब पीना, पान, तम्बाकू-गुटका खाना और मांसाहार करना सीख जाते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे स्वयं इनसे बचें और अपने बच्चों को भी इन बुरी आदतों से बचाएं। कोकाकोला, थम्सअप आदि ढंडे पेय, चाकलेट आदि स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते हैं। इनके पीने-खाने पर भी निगरानी और समझाइश की जरूरत होती है।

चारित्रिक दृष्टि से देखें तो अनेक मासूम बच्चे अपने साथियों के साथ स्कूल में या खेल में या कॉलोनी में पड़ोसी बच्चों के साथ गाली-गलौच करते हैं, कभी मारपीट करते हैं। यहां माता-पिता नहीं देख पाते। जब कोई अधिक गंभीर शिकायतें आती हैं तब अभिभावक को पता चलता है कि उनका बच्चा कितना शैतान है? बच्चे ने यदि वास्तव में कोई गलती की है तो वे गलती स्वीकार करें, आप उसे डाटें और प्यार से समझाये कि भविष्य में वह ऐसा न करे। उसे सच बोलना सिखाएं।

कर्तव्यनिष्ठा, संयम और धैर्य रखना, हिंसा से दूर रहना, समय का सदुपयोग करना, माता-पिता और बुजुर्गों का सम्मान करना, आज्ञाकारी बनना, परोपकार और क्षमा की भावना रखना, साहसी और परिश्रमी बनना, पढ़ने के समय पढ़ना और खेलने के समय खेलना, समय पर टॉयलेट जाना, रोज ब्रुश करना, रोज स्नान करना, समय पर भोजन, समय पर स्कूल जाना, ठीक समय पर प्रात: उठना, समय पर सोना, सभी मानव प्राणियों से प्रेम करना आदि सद्गुणों को बचपन से ही आदत डालने पर बड़े होने तक बनी रहेंगी। इसी के साथ बच्चों को कुछ पवित्र मंत्रों का रोज जप करना, बल बुद्धि और स्वास्थ्य के लिए भगवान से प्रार्थना करना और योगासन प्राणायाम करना भी सिखाएं। इससे उनका मन और हृदय पवित्र होगा और वे हमेशा स्वस्थ रहेंगे। आपका बच्चा जितना अधिक सद्गुणी होगा, उतना ही उनका जीवन आगे खुशहाल होगा और आप भी तनावमुक्त रहेंगे। इस तरह माता-पिता के जागरूक होने से भावी बच्चे अच्छे बन

बेहद जरूरी होने पर ही कहें सख्त बातें

तिरुवल्लुवर

मान्यता है कि संत और कवि तिरुवल्लुवर का जन्म चैन्नै के पास माइलापुर में हुआ था। उनका वक्त ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के आसपास का माना जाता है। उन्होंने जो भी महत्वपूर्ण कहा, वह सब कुछ महान तमिल ग्रंथ तिरुक्कुरल में संकलित है। उनकी पत्नी वासुकि एक धार्मिक और आदर्श महिला थी। तिरुवल्लुवर का कहना था कि साधु-संत बनने के लिए संन्यास लेना जरूरी नहीं है। गृहस्थ जीवन में रहकर भी इंसान पवित्र और धार्मिक जीवन जी सकता है।

- मौत एक नींद है और जीवन? जीवन उसके बाद जागने की स्थिति है।
- जो शख्स दूसरे की पत्नी की इच्छा करता है, वह चार चीजों से कभी नहीं बच सकता। ये हैं- नफरत, पाप, डर और शर्मिंदगी।
- अगर कोई आपके साथ बुरा करता है तो उसे दण्ड जरूर दें। कैसे? बदलें में उसके साथ अच्छा करके उसे शर्मिंदा करें और उसके द्वारा की बुराई और खुद की अच्छाई दोनों को भूल जाएं।
- जो लोग 'मैं' और 'मेरा' से बच जाते हैं, उनके लिए जमीं पर ही स्वर्ग बन जाता है।
- अगर कोई गृहस्थ जीवन उस तरह जीता है, जैसे उसे जीना चाहिए, तो इंसानों में उसे भगवान माना जा सकता है।
- पत्नी में भले ही सब कुछ हो, पर पारिवारिक गुण न हों, तो जीवन बेकार है।
- कठोर सिर्फ अपने लिए जीते हैं, पर दयालु दूसरों के लिए जीते हैं।
- बुद्धिमान लोग बेहद जरूरी होने पर ही कठोर वचन बोलते हैं।
- अगर कोई तुम्हारे सामने भी तुम्हारा अपमान कर दे तो भी उसकी पीठ पीछे निंदा मत करो।
- जो दूसरों के साथ मिल-बांटकर खाता है, भूख उसके पास भी नहीं फटक सकती।
- इकतरफा प्यार कष्टदायक होता है।

धर्मेन्द्र डाकलिया

जरूरी है गर्मी में लू से बचना

परिवर्तन संसार का नियम है। जो कल था, आज नहीं है। प्रकृति का यह चक्र निरंतर रूप से चलता रहता है। वर्षभर में समय के अनुसार ऋतुएं भी बदलती रहती हैं। मार्च से जून माह तक के चार महीने ग्रीष्मकाल कहलाता है। इन दिनों दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में तापमान 45 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। इससे न तो दिन में चैन मिलता है और न ही रात को आराम।

गर्मी का मौसम आदान काल का अंतिम समय होने के कारण सूर्य की प्रचण्डता और प्रखरता विशेष होती है। सूर्य की इन्हीं प्रचण्ड किरणों द्वारा पृथ्वी का सोम भाग विशेष रूप से प्रभावित होता है। अतएव ग्रीष्म में शरीर के सोम अंश कफ का क्षय होने लगता है।

आयुर्वेद में 'ग्रीष्मे संचीयते वायु:' कहा गया है। वायु तेज चलती है, आर्द्रता नहीं के बराबर होती है। गर्मी में इस प्रकार की सूखी तेज हवा को ही लू कहा जाता है। प्राकृतिक रूप से मनुष्य के शरीर की त्वचा रेडियेटर का काम करती है। त्वचा के छिद्र खुले रहते हैं और पसीना भाप बनकर शरीर को ठंडक पहुँचाता रहता है। लेकिन कभी-कभी अधिक गर्मी के कारण व्यक्ति का यह रचना तंत्र गड़बड़ा जाता है और इस ऊष्णता से रचना तंत्र में अचानक बाधा आ जाती है। इससे स्वस्थ व्यक्ति मेडिकल इमरजेंसी की तरह रोगी हो, अचेत अवस्था तक में पहुँच जाता है। आदमी के शरीर का तापमान 105 डिग्री सेल्सियस से 106 डिग्री सेल्सियस तक हो जाता है। रोगी को तेज श्वास, सिर दर्द, जी मचलाना, चक्कर आना, सन्निपात, आंखों के सामने अंधेरा तथा मूर्च्छा या अर्द्ध-मूर्च्छा हो सकती है। शरीर में झटके लगने लगते हैं, पसीना आता है जो भाप बनकर उड़ता रहता है इसलिए त्वचा सूखी हो जाती है। नब्ज, नाड़ी और श्वास की गति तेज हो जाती है। शरीर का तापमान यकायक अधिक बढ़ जाने से रोगी 'लू' की चपेट में आ जाता है। यह रोग संक्रामक नहीं होता अत: इसकी चिकित्सा एवं इलाज धैर्यपूर्वक करें।

सर्वप्रथम रोगी का तापक्रम सामान्य लाया जाए, यही इसकी चिकित्सा है। तापक्रम कम करने के लिए व्यक्ति को ठंडे पानी की पट्टी चढ़ाना, शरीर पर बर्फ रगड़ना आदि। और यह क्रम तब तक जारी रहना चाहिए जब तक रोगी का तापमान कम न हो जाए। यदि तापमान कम हो जाता है तो रोगी लू की चपेट से जल्दी ही आराम पा सकता है। और यदि तापमान कम ना हो तो किसी अच्छे चिकित्सक को रोगी को दिखाकर परामर्श लेना चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि एक बार 'लू' की चपेट में आए व्यक्ति को ठीक होने पर दोबारा 'लू' ना लगे क्योंकि दुबारा 'लू' घातक हो सकती है और ऐसे रोगी की तापमान प्रणाली पुन: शीघ्र सामान्य नहीं हो पाती है।

> **"आयुर्वेद में 'ग्रीष्मे संचीयते वायु:' कहा गया है। वायु तेज चलती है, आर्द्रता नहीं के बराबर होती है। गर्मी में इस प्रकार की सूखी तेज हवा को ही लू कहा जाता है।"**

'लू' लगने से शरीर में निर्जलता हो जाती है अत: गर्मी में प्रतिदिन 10-12 गिलास पानी अवश्य पीना चाहिए। पसीने के साथ-साथ शरीर से आवश्यक लवण भी निकलते हैं। इनसे कमजोरी, पैरों एवं पिंडलियों में ऐंठन, मरोड़ और थकान महसूस होती है। इसलिए पानी का अधिक सेवन लाभकारी है। स्वयं प्रकृति इन दिनों ऐसी चीजें पैदा करती है जो हल्की और स्निग्ध होने के साथ-साथ शरीर पर होने वाले गर्मी के प्रभाव को भी शांत करती है।

प्याज, पोदीना, इमली, आम, ककड़ी, खीरा, केरी, गन्ने का रस, टमाटर, तरबूजा, खरबूजा, प्राचीन खाद्य सत्तू-ऐसी चीजें है जो प्रकृति ने इस ऋतु के लिए विशेष रूप से दी हैं। भोजन में गरिष्ट और अजीर्ण कारक पदार्थों का सेवन वर्जित है। साढ़ी चावल का भात, जौ, ज्वार, गेहूँ, रोटी, मूंग, अरहर, मटर, मसूर की दाल, तरबूज, ककड़ी, पेठा, परवल, लौकी की सब्जी, मीठी दही, मट्ठा, लस्सी, फलों के जूस का सेवन लाभप्रद है। गर्मी में थोड़ी-सी सावधानी और आहार-विहार पर ध्यान देने से 'लू' तथा संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है। तेज धूप और सिंथेटिक कपड़े से बचना चाहिए। लू लगने पर शरीर का तापक्रम न बढ़ने के उपाय तुरंत करने चाहिए। औषधियों में त्रिभुवन कीर्ति रस, लक्ष्मी विलास रस, मृत संजीवनी प्रवाल पिष्टी आदि चिकित्सक के परामर्श से लेना श्रेष्ठ है।

-11, समता भवन के पास,
नई लाइन, गंगाशहर, बीकानेर

जीवन के लिए जरूरी है मिठास

यह पाया गया है कि दिन-ब-दिन लोगों के स्वभाव में आक्रामकता, चिड़चिड़ेपन और असहिष्णुता का इजाफा होता जा रहा है। यह चिंतनीय पहलू है। शुगर और मेटाबोलिज्म के तथ्य और आंकड़े जो बात कहते हैं, वे तो महज वैज्ञानिक अध्ययनों और मेडिकल साइंस की शोध से प्राप्त निष्कर्ष हैं, लेकिन अगर इसे एक उदाहरण की तरह लें तो क्या यह नहीं कहा जाना चाहिए कि हमारे जीवन से मिठास कम होती जा रही है? यह तो तय है कि कड़वाहट और तनाव के साथ हम सुख और संतोषभरा जीवन नहीं व्यतीत कर सकते। मिठास महज विज्ञापनों का स्लोगन ही नहीं, हमारे जीवन की गहन जरूरत भी है।

-मुकेश अग्रवाल

संस्कृति

शुभदा पांडेय

पृथ्वी-पूजा है रंगोली

यह सृष्टि सदा प्रणम्य है, क्योंकि यह ईश्वरीय रूप है। अग्नि, जल, वायु, आकाश और पृथ्वी–ये पंच-तत्व सृजन के आधार हैं। सृष्टि संधि और विच्छेद विश्लेषण की कहानी है। कहीं संस्लेषण की प्रक्रिया पूर्ण होकर, अपनी नई परिभाषा को तलाशती है, तो वहीं विश्लेषण एक नई व्यवस्था की शोध में अवगुंठित रहता है। यही प्रक्रिया सृष्टि-क्रम है, जीवन-क्रम है, इसीलिए अनादिकाल से इन पंच प्राणों की पूजा का विधान है। सूर्य-पूजा, आकाश-पूजा, यज्ञादि, अग्नि-पूजा, धूप-होमादि-वायु पूजा, कलश-पूजन, जल-पूजन तथा पृथ्वी-पूजन प्रत्यक्ष पूजा है।

पंच-महाभूतों के अधिपति के रूप में पंच-देवों की संकल्पना भी की गई है-जैसे अग्नि तत्व के स्वामी सूर्य, आकाश तत्व के स्वामी विष्णु, जल तत्व के शिव, वायु तत्व के हनुमान तथा पृथ्वी तत्व के गणेश हैं।

इन पांचों में मातृरूपा पृथ्वी है, जिसका ठोस आधार, आंचल, स्पर्श और सान्निध्य हमें प्राप्त होता रहता है। मानव की संपूर्ण दिनचर्या या जीवन पृथ्वी पर ही आश्रित है। वह केवल एक घटक नहीं, एक संपूर्णता है-जीवन की। मिट्टी-सी दिखने वाली मां–सचमुच मृत्तिका होती है, जिसका अपना कोई सांचा नहीं होता, जैसा गढ़ दे बालक, उसी में ढल जाती है, जो कुछ समाभूत कर दे, वही उपजता है, जहां जो लगा दे, उसे ही पोषने लगती है, जो निर्माण कर दे, उसे ही संवारने लगती है।

कहते हैं कि मां की भाषा में बच्चा बतियाता है, लेकिन सच तो यह है कि मां ही बच्चे की भाषा में तुतलाती है। इतना स्नेह-समर्पण केवल मां ही कर सकती है। इसीलिए पृथ्वी मां है। गंधरूपा मां। अन्य तार तत्व भी इसे संवारने में प्रस्तुत रहते हैं। इसके पूजन के परोक्ष व अपरोक्ष रूप से अनेक विधान हैं। प्रात: उठते ही सर्वप्रथम पृथ्वी को प्रणाम करने की परम्परा है। ब्रह्ममुहूर्त में उठकर घर की परिचर्या पूरी कर, द्वार-सज्जा ही प्रथम गृहाभिषेक है। वहीं से देवागमन होता है। इसमें जल-सिंचन या लीप-पोत कर आंगन या द्वार को शुद्ध-स्निग्ध किया जाता है, उसके बाद, उस पर विविध रंगों से चित्र, पुष्प, आकृति, शुभ-जीव आदि से कलात्मक ढंग से सजाया जाता है, इसे रंगोली कहते हैं। इसे अल्पना या चौका पूरना भी कहते हैं। यह प्रतिदिन संवारने वाली कृति है, जिससे हवा, द्वार, स्वागत-भूमि सभी सुरक्षित व सुरभित हो उठते हैं और पृथ्वी-पूजा की प्रथा की पूर्ति होती है। दक्षिण भारत में नित्य ही यह परम्परा पूरी की जाती है।

सुबह-सुबह इस पूजन से एक ओर जहां धरती शृंगारित होती है, वहीं दूसरी ओर भोर का अपना भी मन चटक खिल उठता है। हमारे अंदर के पृथ्वी-तत्व को दुलारने की इससे अधिक अच्छी विधि क्या हो सकती है? इसकी ताजगी की संपूर्ण दिन अनुभूति होती है। ऋषि-परम्परा में सब कुछ सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के अंतर्गत आता है। हमारे द्वार के ये अभिलेख पृथ्वी के सत्य हैं, प्राणी हेतु शिवम् हैं और सारत्व हेतु सुंदर है।

सृजक को सृजन की अनुभूति और सृजन को सृष्टि की रसानुभूति, यही तो है रंगोली की पृथ्वी-पूजा।

–मंगलायतन विश्वविद्यालय
अलीगढ़-202145 (उ.प्र.)

न्यूमरोलॉजी में नंबर 5 का महत्व

नीता बोकाड़िया

सफल, सुस्त, भ्रमित और ख्यात नंबर-4 के उतार-चढ़ाव देखने के बाद आज देखिए खुशमिजाज, चालाक और एवरग्रीन नंबर 5 की रफ्तार : किसी भी महिने की 5, 14 या 23 तारीख को पैदा हुए लोगों का स्वामी ग्रह बुध होता है। यह अपनी हाजिरजवाबी और तेजी से बदलते रूख के लिए ख्यात है। इसे एवरग्रीन प्लैनेट भी माना जाता है यानी हमेशा युवा! इसका संस्कृत नाम कुमार ही है, जो इसके जवां और शाही मिजाज को उजागर करता है।

बुध से प्रभावित लोग सोचने और फैसले लेने के मामले में काफी तेजरफ्तार होते हैं, क्योंकि स्वभाव से ये उतावले होते हैं। ये लोग मनी माइंडेड होते हैं और आरामतलब भी। ये चालाक और चालबाजियों में माहिर होते हैं और रोमांचक यात्राओं के अनुरागी। ये आधुनिक विचारों में दिलचस्पी रखते हैं और अपने आसपास के माहौल को खुशनुमा बनाये रखते हैं। इनकी कल्पनाशक्ति और प्लानिंग हमेशा उत्कृष्ट होती है। ये लोग शारीरिक श्रम की अपेक्षा मानसिक श्रम में विश्वास रखते हैं। अपना बड़प्पन दिखाने और डींगे मारने की इनकी आदत होती है।

ये लोग दोस्ती करने के मामले में भी तेजी दिखाते हैं, पर इनके लहरिया स्वभाव के कारण इनकी दोस्ती ज्यादा टिकाऊ नहीं होती। ये अपनी खुशमिजाजी और अपने आधुनिक और आकर्षक विचारों से लोगों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। अगर इनका स्वभाव ठीक है, तब तो सब ठीक पर इनका स्वभाव खराब है, तो इन्हें दुनिया की कोई ताकत नहीं बदल सकती। इनका रुझान सट्टेबाजी जैसे कामों में भी होता है। सूर्य, शुक्र, राहू और केतु से बुध की खूब पटती है, मगर चंद्रमा से ठनती है। नंबर 5 के लोगों को अपने महत्वपूर्ण काम आदि किसी भी महिने की 5, 14, या 23 तारीख को शुरू करने चाहिए। बुधवार और शुक्रवार इनके लिए बढ़िया दिन होते हैं और अनुकूल रंग होते हैं – 'ग्रीन, ग्रे और वाइट। इन्हें महालक्ष्मी की शक्ति-आराधना करनी चाहिए और बुधवार को व्रत रखना चाहिए।

कुछ खास नंबर-5 की हस्तियां

जवाहरलाल नेहरू	14 नवंबर
राजकूपर	14 दिसंबर
सुभाषचंद बोस	23 जनवरी
नील आर्मस्ट्रॉन्ग	05 अप्रैल
डॉ. भीमराव अंबेडकर	14 अप्रैल
विलियम शेक्सपियर	23 अप्रैल
आमिर खान	14 मार्च

–मो. 09920374449 ई-मेल: nettakbokaria@hotmail.com

कविताएं

अमृत नहीं पिया

मनोज जैन 'मधुर'

पाती जब जब मिली मौत की,
रोया बहुत हिया।
जीवन को जैसे जीना था,
वैसा नहीं जिया।

दया–धरम के लगा मुखौटे,
धोते रहे नमक से छाले।
अभिनय करते रहे राम का,
अंतर में रावण को पाले।
लोभ साधु बना सदा शांति की।
हरता रहा सिया।

नश्वरता का सबक सिखाने,
नित नित आये सांझसकारे।
विषयों की मदिरा पी कर के,
बोराये थे भाग्य हमारे
भेद–ज्ञान की दिव्य दृष्टि से,
अंतर नहीं किया।

धर्म अंजूरी में भर अमृत,
जब–जब हमें पिलाने आया।
पाप बेरियों के मन में यह,
फूटी आंख तनिक न भाया।
पीते रहे गरल भोगों का,
अमृत नहीं पिया।

हंसी अमावस अंतर्मन की,
बाहर जब भी मनी दीवाली।
भरे उजाले हमने जग में,
मन के छोड़े कोने खाली।
जड़ के दीप जलाये,
जलाया मन का नहीं दिया।

–सी/एस–13, इन्दिरा कॉलोनी,
भोपाल

सात रंग धूप के

सुधांशु उपाध्याय

क्या कहने रूप के
एक रंग ज्यादा है आपका
सात रंग थोड़े हैं धूप के!

बादल, पानी, फूल, हवाएं
जाग रहीं कुछ पुरा–कथाएं
जाने क्या–क्या छुपा हुआ है
आंखों में स्तूप के!

यादों की तितली मंडराती
बार–बार अधरों तक आती
जैसे भोर उछल कर गिरती–
है गोदी में सूप के!

पोर–पोर फूलों की घाटी
अविरल जलती घी की बाती
गर्दिश में आ गये सितारे
धरा–धाम के भूप के!

पनघट पर पायल की चुहलें
चाहे इसको जो भी कहलें
बहुत दिनों पर भाग जगे हैं
मंदिर वाले कूप के!

–ए–1, पत्रकार कॉलोनी
इलाहाबाद–211001 (उ.प्र.)

उत्तरदायित्व

कुमार शर्मा 'अनिल'

अपने आपसे भी शरमाते
बंद कमरे में वस्त्रा बदलना
या पिफर बेशर्मी से
कैमरे के सामने वस्त्र उतारना
दो अलग–अलग
मनस्थितियां हैं।
स्त्री का सौंदर्य
आवरण में हो तो
लगता है पुनीत।
पुरुष रक्षक की मुद्रा में
सर्वाधिक आकर्षक।
दोनों ही विमुख हैं
अपने–अपने उत्तरदायित्वों से।

–1192–बी, सेक्टर 41–बी,
चण्डीगढ़

ऊंचे पर्वत तक झुकें

डॉ. गोपालबाबू शर्मा

सज्जन देते सुख सदा, दुर्जन देते त्रास।
आखिर तो देगा वही, जैसा जिसके पास।।

बढ़ते सूरज को सदा, लोग नवाते माथ।
पथ में गिरते व्यक्ति का, कौन थामता हाथ।।

जीना बस अपने लिए, जीना नहीं कबीर।
दुख की दुनिया में अगर, महका नहीं अबीर।।

शक्ति पाप में है बहुत, किन्तु उम्र संक्षिप्त।
दुख ही पाता अन्ततः, जो उसमें हो लिप्त।।

सभी नशे डगमग करें, बदतमीज, बदरंग।
धन, पद, यौवन, रूप, बल, ज्ञान, सुरा या भंग।।

उसे याद रखना वृथा, बीत गई जो बात।
खुल जाएं आंखें तभी, समझो हुआ प्रभात।।

बड़ी लड़ाई के लिए, खास न छोटी हार।
लम्बी राहों में कदम, थमने में भी सार।।

बने सतत अभ्यास से, कठिन काम आसान।
ऊंचे पर्वत तक झुकें, विष हो अमिय समान।।

घर को मत समझो महज, पत्थर की दीवार।
घर रहते आबाद वे, जहां भरोसा, प्यार।।

प्रीति–रीति चाहे अगर, कूटनीति को छोड़।
दिल पर जो क़ब्ज़े लगे, उन कब्ज़ों को तोड़।।

–82, सर्वोदय नगर, सासनी गेट
अलीगढ़–202001 (उ.प्र.)

अभिलाषा

त्रिलोकेश्वर तरुण

उदास चेहरा लिए घूमते ईश्वर–
एक दिन राह में मुझसे मिले!
मैंने हाथ जोड़े–'प्रभु' प्रणाम!–
कृपा तो है!
भगवान चौंके! नजरे उठाई, रुके, पूछा–
'तुम कौन?'
मैं हतप्रभ!
'हे ईश्वर! मुझे ही भूल गए!
मैं हूं मानव, आपकी श्रेष्ठ कृति!
झुकी गरदन उन्होंने उठाई–
पूछा–'तुम्हें मुझ पर कैसे दया आई?'
भय से या लालच से,
मुझे पूजने वाले मानव–
तुमने मुझे कैद कर रखा है,
शैतान की सुनते हो,
जैसा वो चाहता है करते हो।
तुम्हारे खून से सने हाथ देख–
मुझे उतना दु:ख नहीं होता–
यदि तुम्हारे दूसरे हाथ में, मैं–
कुरान, रामायण, बाइबिल नहीं देखता!
इस तरह बार–बार तूने मेरा ही खून किया है,
और मैंने बार–बार तुझमें जीया है!
तुम्हें शिकायत है कि–
मैं तुम्हें नहीं दीखता?
रे मूढ़! बिना दर्पण के चेहरा कभी दिखा है?
मन की दर्पण में जमीं,
अभिमान के धूल झाड़,
घृणा, क्रोध की मैल फाड़,
तुम्हें मेरी झलक मिलेगी!
ग्रीष्म की तपती धूप में–
खेत में पसीना से नगीना उगाने वाले भाल देख
तुझे मेरी 'आस्था' दीखेगी,
निर्माण में तल्लीन हथौड़े चलाते,
हाथों में फफोले निहार,
तुझे मेरा विश्वास दीखेगा!
कमजोर–हाथों से छीनी रोटी,
उसे दिला–
उसकी तृप्ति में मेरा इंसाफ तुझे दीखेगा!
धूल–धूसर बदन लिए–
मां की गोद में बरबस चिपक जाने वाले–
बच्चे का अपनापन देख!
तुझे मेरा संसार दीखेगा!
भय–आतंक, घृणा–क्रोध के अंधियारे में–
भटकने वाले मानव!
मन के दरवाजे खोल,
मैं पुन: प्रवेश करना चाहता हूं!

–जयप्रकाश कॉलोनी, मधुबनी,
पूर्णिया–854301

हरे–भरे हों उपवन

डॉ. श्रीगोपाल नारसन

गांव की वह चौपाल
अब वीरान हो गई।
नहीं सुनाई देतीं वहां
हुक्के की गड़गड़ाहट।
लुप्तप्राय: हो गई
चारपाइयों की भीड़,
नहीं नज़र आते
गांव के बूढ़े लोग,
आखिर कहां चले गए?
चौपाल से कहां खो गए?
बगैर पल्लू के जाती
लड़कियों को,
नहीं पड़ती अब
बाबा की डांट।
सुनने को तरस गए
दादी मां की कहानी,
बचपन छिन गया,
किताबों के बोझ से,
नहीं आती अंब जवानी
खून जैसे बन गया पानी
गंगा तक मैली हो गई है
हिमशिखा भी प्रदूषित हो गई है
कैसे उजला होगा पहाड़ का बदन
हरे–भरे हों हमारे उपवन।

–पो.बॉ.न. 81, 460–बी,
गीतांजलि विहार
गणेशपुर, रूड़की (उत्तराखंड)

मन और व्यक्ति

डॉ. जितेन्द्र लोढ़ा

मन अच्छा तो, सुलझन है,
मन विचलित तो, उलझन है,
मन शांत तो, उत्सव है,
मन अशांत तो, टूटन है,
मन काबू तो, सर्जन है,
मन बेकाबू तो, विसर्जन है,
मन स्थिर तो, ठहराव है,
मन चंचल तो, भटकाव है,
मन शुद्ध तो, आकार है,
मन अशुद्ध तो, विकार है,
मन दृष्टि तो, विचार है,
मन अंधा तो, लाचार है,
मन प्रकाश तो, सविता है,
मन भाव तो, कविता है।

–विभागाध्यक्ष सेवारत शिक्षा
बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय, गांधी विद्या मंदिर,
सरदारशहर, चुरू (राजस्थान)

मत बोल कोयलिया

मदन 'विरक्त'

कू–कू–कू मत बोल कोयलिया,
यह स्वर मुझे नहीं भाता है।
तेरी स्वर–सरिता बहती है,
मेरा हृदय उमड़ आता है।।

तू मधु पीकर अमराई में,
इतराती है, इठलाती है।
मुझ विरही की रोते–रोते
सारी रात गुजर जाती है।।
मंदिर चसक सोई पीड़ा का,
तेरा स्वर छलका जाता है।।।1।।

तू अलि मस्ती के मधुवन में,
आशा का संगीत सुनाती।
निपट निराशा की तानों से,
मेरा दग्ध हृदय तड़पाती।।
मेरे मन का दर्पण इस से,
चकनाचूर हुआ जाता है।।2।।

तू मेरे आहत सपनों में,
हलचल एक मचा जाती है।
मेरे सोये अरमानों को,
आकर सतत जगा जाती है।।
दृग–सीपों से पिछले मोती,
जाने कौन लुटा जाता है।।3।।

तू रसिकों के मन–मंदिर में,
आशा–दीप सजोने आती।
किन्तु, न मेरे मन का,
मैल कभी तू धोने पाती।
तू गाती है, मैं रोता हूं,
यों मधु मास चला जाता है।।4।।

–प्रबंध निदेशक, महाराजा अग्रसेन
समाचार, डी–98, प्रथम तल, गली नं. 5
लक्ष्मीनगर, दिल्ली–110 092

चिंतन

आचार्य श्री विद्यानंद मुनि

कैसे बिताएं स्वस्थ जीवन ?

इस शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अर्थात् मन वचन काय को शुद्ध रखने के लिए आचार्यों ने धर्मध्यान की बात बताई है। थोड़ा बहुत शरीर के बारे में भी जानना बहुत आवश्यक है। शास्त्रों में लिखा है कि धर्मध्यान से भी शरीर स्वस्थ रहता है। जैनाचार्यों ने तीन ग्रंथ लिखे हैं। एक शरीर स्वस्थं रखने के लिए वैखरी ग्रंथ जिसे उग्रादित्य आचार्य ने लिखा है और एक वचन शुद्धि के लिए कालाप का तंत्र ग्रंथ है। शुद्ध बोले, शुद्ध उच्चारण करें। और तीसरा मन शुद्धि के लिए समाधि शतक है।

आप जानते हैं कि शास्त्रों में बार-बार कहा गया है कि क्रोध मत करो। अनंतानुबंधी क्रोध, कषाय आदि मत करो। क्रोध करने से हमारे शरीर के अंदर जो शांतिरस के परमाणु हैं वे जल जाते हैं और परिणामस्वरूप आदमी बीमार पड़ जाता है और शरीर पर उसका बुरा असर पड़ता है। इसलिए शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आचार्यों ने प्राणायाम सिखाया, धर्मध्यान की बातें बताई। बचपन में हमें आठ साल की उम्र में मंदिर में धर्मध्यान और योग सिखाया जाता था।

धर्मध्यान करते समय पूर्व की ओर मुख करके बैठना चाहिए। क्योंकि जो दिशाएं हैं उनका भी अपने आप में महत्व है। पूर्व दिशा में बैठने से मोहांतक होता है, मोह नष्ट हो जाता है। मोह निर्जरित हो जाता है। मोहनीय कर्म सबसे बड़ा खतरनाक है। इसलिए आचार्यों ने पूर्व दिशा को मोहांतक बताया। और जो दक्षिण दिशा है वह यम दिशा होने से उस दिशा में मुंह करके धर्मध्यान करना, जप करना... ये प्रज्ञांतक है। इससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। इसलिए दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके धर्मध्यान नहीं करना चाहिए। पश्चिम दिशा की ओर सूर्य अस्त होता है। सूर्य अस्त होने के बाद कमल का मुंह बंद हो जाता है, इसलिए इसे पद्मांतक कहते हैं। जैसे कमल बंद हो जाता है, वैसे ही इस दिशा की ओर मुंह करके बैठने से मन छोटा होता है। इसलिए पश्चिम दिशा की ओर भी मुंह करके नहीं बैठना चाहिए। उत्तर दिशा को विघ्नांतक कहते हैं। इस दिशा की ओर बैठकर धर्मध्यान करने से विघ्न दूर होते हैं। इसलिए प्रथमतः आचार्यों ने पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठने के लिए कहा है। हाथ-पैर धोकर, साफ सुथरा करके, मन को स्वच्छ रखें, चित्त को स्वच्छ रखें और शरीर को ढीला रखें। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए धर्मध्यान भी अपने आप में महत्वपूर्ण है।

शरीर तो रोगों का घर है। शरीर को भी जानना बहुत जरूरी है। हमारे पास तीन संपत्ति हैं। एक-शरीर संपत्ति। उसको शुद्ध एवं निरोगी रखना चाहिए। मुनियों को, साधु-संतों को निरोगी रहने के लिए शरीर-विज्ञान का ज्ञान बहुत जरूरी है। दूसरी संपत्ति-वचन-संपत्ति। उसका भी सदुपयोग होना चाहिए। और तीसरी संपत्ति मन है। इस प्रकार मन-वचन-काय ये तीनों हमारे पास बहुत बड़ी संपत्ति हैं। फिर भी लोग कहते हैं कि हमारे पास कुछ नहीं है। शास्त्रीय भाषा में शरीर ज्योति कहा है। जैसे ज्योति प्रकाशमान है, वैसे शरीर भी प्रकाशमान है, इसको स्वस्थ और शुद्ध रख करके इसे ज्योतिर्मय बना सकते हैं। फिर शब्द-ज्योति है। हमारे मुंह से जो शब्द निकलते हैं वे एक तरह से ज्योति हैं। ज्ञान-प्रकाश है-णाणो पकास। फिर आत्म-ज्योति है। आत्मा भी प्रकाशमान है। मन भी प्रकाशमान है। इस प्रकार इन तीनों (मन, वचन, काय) को जानना और इनको स्वस्थ रखने के लिए धर्मध्यान की आवश्यकता है।

संक्षिप्त में इन तीनों के बारे में बताऊं-शरीर में तो करोड़ों प्रकार की बीमारियां हैं। कौन-सी बीमारी कब उद्भूत हो जाये, कहा नहीं जा सकता। आज नित्य नई-नई बीमारियां दुनिया में पैदा हो रही हैं। इसका मूल कारण असंयम है। धर्मध्यान नहीं, शरीर का ज्ञान नहीं, खान-पान में संयम नहीं, इसलिए ये बीमारियों हो रही हैं। खान-पान के संयम के साथ अपने परिणामों को भी शुद्ध रखें। शरीर के बारे में एक बात आपको बताना चाहता हूं कि हमारे मस्तिष्क में हम नाक से ऑक्सीजन लेते हैं, जो हमें पेड़ों से मिलता है। इसीलिए शास्त्रों में लिखा गया है कि हमें पर्यावरण की सुरक्षा पर ध्यान देना चाहिए। पेड़ों को नहीं काटना चाहिए। उनसे ऑक्सीजन मिलता है। चौबीसों घंटे तो हम खाना खाते नहीं है। कोई एक बार खाते हैं, कोई दो बार खाते हैं, कोई तीन बार खाते हैं, कोई एकाशन करते हैं, कोई दिन में ही खाते हैं। परन्तु ऑक्सीजन चौबीसों घंटे लेते हैं। एक क्षण भी नहीं रुक सकते। इसकी सबसे ज्यादा जरूरत शरीर को है। तो हम जो नाक से श्वास लेते हैं, वह शरीर में जाकर पांच भागों में विभाजित होता है। मस्तिष्क में जो प्राणवायु होता है वह सफेद स्वच्छ निर्मल होता है और जो प्राणवायु मस्तिष्क में होता है उसको शास्त्रीय भाषा में (आयुर्वेद शास्त्र में) उदान वायु कहते हैं। उदान वायु यदि साफ सुथरा, स्वच्छ है, तो आदमी का मन प्रसन्न होता है, वह मुस्कराते रहता है। उसके मन में दान देने की भावना, परोपकार की भावना, सेवा करने की भावना उत्पन्न होती है। धर्मध्यान करने के, पूजापाठ करने के, शास्त्र पढ़ने के भाव पैदा होते हैं। और यदि उस उदान वायु में कोई प्रदूषण घुस जाये तो आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है, क्रोधी हो जाता है, मारपीट करने लगता है, बिना मतलब के बुरे-बुरे विचार मन में सोचने लगता है। आजकल जो गाड़ियों के धुंए न चाहते हुए मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर रहे हैं, उनसे भी बीमारियों बढ़ रही हैं

उदान वायु के अलावा कंठ में भी प्राणवायु है। कंठ में जो प्राणवायु है वह हरे रंग का है। जब हम कोई चीज मुंह में डालते हैं तो इस वायु का काम है उसे पेट में पहुंचाना। यदि वह बिगड़ जाता है तो उल्टियां शुरू हो जाती हैं। इसलिए उसको भी स्वस्थ रखना बहुत जरूरी है।

इसके अलावा एक अपान वायु होता है। वह काले रंग का होता है। वह सारे शरीर में घूमते रहता है। उसका काम है शरीर से पसीना आदि जो विषैले द्रव्य हैं उनको शरीर से बाहर निकलाना। आंख, नाक, कान आदि में जो अनावश्यक द्रव्य होते हैं जो शरीर को नुकसान पहुंचा सकते हैं, उन सबको वह धक्का देकर शरीर से बाहर निकालता है।

और नाभिकमल में समान वायु होता है। वह पीले रंग का होता है।

व्रतियों को, संयमियों को शरीर स्वास्थ्य के प्रति ज्यादा उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उसका भी ज्ञान रखना। शरीरं योगिनां गृहं। योगियों के लिए शरीर ज्ञानमंदिर है। काम करने के लिए यह सहायक है। जैसे घर होता है, वैसे ही आत्मा का घर शरीर है। इसलिए उस घर की भी मरम्मत करनी चाहिए यानी स्वस्थ रखने की कोशिश/प्रयत्न करना चाहिए और धर्मध्यान करना चाहिए।

उसका काम है कि हम जो खाते हैं उसको वह पचाता है। वह भोजन को सुपाच्य बनाता है। इसलिए सुपाच्य वस्तु ही खानी चाहिए, गरिष्ठ पदार्थ नहीं खाना चाहिए। तामसी प्रवृत्ति का खाना नहीं खाना चाहिए। इस तरह समान वायु पाचनक्रिया का कार्य करता है। और एक व्यान वायु है शरीर में जो लाल रंग का वायु है, वह डायलेसिस का काम करता है। वह खून को एक जगह पर ठहरने नहीं देता है। वह खून को शरीर भर में घुमाते रहता है। खून जहां रुक जाये वहां दर्द शुरू हो जाता है। इसलिए चलना, फिरना, काम करना, यानी हाथपैर हिलाते रहना चाहिए। यदि ये सब न करो तो डायलेसिस न होने से आदमी बीमार पड़ जाता है। पहले हाथ से कुंए से पानी खींचते थे, कुटाई करते थे, चक्की पीसते थे। सब काम करते थे, इसीलिए वे स्वस्थ रहते थे। आज हर बातों के लिए औषधि लेते हैं। आज इंसान औषधि और इंजेक्शन पर जीवित है। सहसा औषधियों से बचना चाहिए, बहुत ही जरूरत पड़े तो ही उन्हें लेना चाहिए। इस तरह से शरीर में पांच प्रकार के वायु हैं, वे अपना काम नियमित करते रहते हैं।

जैसे जिस तरफ हवा जाती है उसी तरफ बादल भागते हैं, उसी प्रकार हमारे शरीर में भी वात-पित्त-कफ, इन तीन चीजों का संचार होता है। कोई वायु शरीर में अधिक पैदा हो जाए तो हम परेशान हो जाते हैं। चने आदि अधिक खाने से वायु अधिक बनती है। इसी प्रकार खट्टी चीजें खाने से पित्त का प्रकोप बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप उल्टी होने लगती है, चक्कर आने लगते हैं। इस तरह यह पित्त भी आदमी को पंगु बना देता है। जब चक्कर आने लगता है, तो आदमी गिर जाता है, वह अस्वस्थ हो जाता है। सूरज अस्त होने के बाद जो खाना खाते हैं उससे कफ बनता है। उससे घुटने आदि में दर्द होने लगता है। क्योंकि सूरज उगने के बाद हमारा नाभिकमल खिल जाता है। हम जो भी खाते हैं पित्त उसे वह पचा देता है। और सूरज अस्त होने के बाद जो आधा घंटे बाद रात में खाना खाते हैं वह पचता नहीं है, उसका सिर्फ कफ बनता है। और वायु भी कम होती है। पेट पर ज्यादा जोर पड़ता है, इसलिए हाजमा धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगता है। इसलिए पित्त, कफ और वात इन तीनों को समान रखने के लिए भी हमें सोच-समझकर खाने-पीने में, चलने में संयम रखना चाहिए।

इसलिए जैन शास्त्रों में पहले शिक्षा फिर भिक्षा, और फिर दीक्षा की बात कही। पहले ट्रेनिंग दी जाती थी। बच्चों को बताया जाता था कि बैठकर पानी पियो। फ्रिज का पानी मत पियो, घड़े का पानी पियो। फ्रिज के पानी और घड़े के पानी में फर्क क्या है? पानी मिट्टी में होता है। घड़ा भी मिट्टी का है और पेट भी मिट्टी का है। इसलिए घड़े का पानी नुकसान नहीं पहुंचाता है। पर फ्रिज का पानी करंट (बिजली से) ठंडा हुआ होता है इसलिए पीने में तो ठंडा लगता है मगर उसका मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ता है और उसमें कोई अच्छे तत्व भी नहीं होते हैं।

हमारे शरीरशास्त्र में, बच्चा मां के पेट में आता है तब से लेकर जन्म तक का वर्णन है। और कैसे-कैसे जीव शरीर में बढ़ते रहता है। जीव एक तत्व है। वह चेतनमय है। शरीर और आत्मा ये दोनों भिन्न पदार्थ हैं। हमारे शरीर में निगोदीकाय एक जीव है, वह शरीर के सभी अंगों की, आंख, कान, नाक, बाल आदि की रचना करता रहता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा एवं संगीत समयसार आदि ग्रंथों में वर्णन है कि मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए भजन गाना, भजन सुनना, संगीत सुनना भी जरूरी है। जिसकी संगीत सुनने की या गीत गाने की आदत है, उसको कभी टेंशन नहीं होता है, उसका मन प्रसन्न रहता है। हमारी महिलाएं पहले चक्की पीसते समय गाना गाती थी। या वाद्य बजाती थी, उससे मन बहुत प्रसन्न रहता था। चौबीसों घंटे चार दीवारी में रहते हुए यदि स्वस्थ रहना है, तो कोई स्वाध्याय करें, अच्छे-अच्छे नीति-ग्रंथ पढ़ें, इसी प्रकार से धर्मध्यान के गीत गायें।

जैनाचार्यों ने बहुत भजन लिखे हैं। आशाधर सूरि ने लिखा है कि –भज भगवंत..... इसी प्रकार आशधर सूरि ने यह भी लिखा है- जय मंगलं नित्य शुभ मंगलं जय विमल...। ये जो भजन हैं इन भजनों को आरती के समय शाम के वक्त अवश्य गाना चाहिए। जो भजन बोलकर भोजन करते हैं उनका भोजन अच्छा होता है, वह सुपाच्य होता है और वे स्वस्थ रहते हैं।

इस प्रकार जैनाचार्यों ने जीने की कला भी सिखलाई। ज्ञानकला जिनके मनमाही। जीवन को किस तरह से स्वस्थ रखना चाहिए, यह भी एक कला है। आया मन में कुछ बोल दिया, आया मन में कुछ भी बक दिया, यह अच्छा नहीं है। इसलिए बहुत सोच समझकर बोलना चाहिए। अतिश्रम भी शरीर के लिए हानिकारक है और बिलकुल भी श्रम नहीं करना, हमेशा लेटे रहना भी शरीर के लिए घातक है।

शरीर स्वास्थ्य के बारे में यही कहूं कि जो स्वास्थ्य-रक्षा के बारे में जानता नहीं, वह कैसे धर्मध्यान कर सकता है, परमात्मा का सुख भोग सकता है? यदि शरीर में कोई बीमारी घुस जाए तो वह आर्तरौद्र ध्यान करेगा। धर्मध्यान नहीं कर सकता है। हाय-हाय करके बहुत दुःख भोगेगा। इसलिए शरीर को स्वस्थ रखना बहुत जरूरी है। सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान करने के लिए हमें आरोग्य शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। इन शब्दों के साथ मैं यही कहूं कि चावल है, छाछ है, इनको भी लेना चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ रहता है।

रक्षंति व्रतिनः एवं शरीरं धर्मसाधनम्। व्रतियों को, संयमियों को शरीर स्वास्थ्य के प्रति ज्यादा उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उसका भी ज्ञान रखना। शरीरं योगिनां गृहं। योगियों के लिए शरीर ज्ञानमंदिर है। काम करने के लिए यह सहायक है। जैसे घर होता है, वैसे ही आत्मा का घर शरीर है। इसलिए उस घर की भी मरम्मत करनी चाहिए यानी स्वस्थ रखने की कोशिश/प्रयत्न करना चाहिए और धर्मध्यान करना चाहिए। जो रोज धर्मध्यान करते हैं वे स्वस्थ हो जाते हैं। ■

छवि बनाना हमारे हाथ में है

काजोल

यह साफ है कि आपकी इज्जत आपके हाथ में होती है। अगर आप बहुत बड़े आदमी हों, लेकिन खुद की इज्जत नहीं करते, तो कोई आपकी इज्जत नहीं करेगा, वहीं अगर आप छोटे भी हों, लेकिन खुद की इज्जत करते हैं, तो सब आपकी इज्जत करेंगे। इसी तरह मेरा मानना है कि अपनी छवि बनाना भी आपके हाथ में है। हालांकि यह सच है कि फिल्म इंडस्ट्री में कास्टिंग काउच जैसी चीजें हैं, लेकिन फिर भी खुद पर भरोसा रखने वाले के सामने गलत लोगों की नहीं चलती। ...सजने-संवरने के बारे में मेरा मत है कि हम रोजाना के जीवन में इतने ज्यादा तैयार होते हैं कि कभी-कभी सजना-संवरना बिल्कुल नहीं भाता। लगता है कि लोगों से मिलें, तो सादा और वास्तविक रहा जाए। फैसला लेने के बाबत मेरा कहना है कि कम से कम मैंने कभी वक्त देखकर कोई निर्णय नहीं लिया। अगर मैं वक्त देखकर निर्णय लेती, तो अभी तक मेरी शादी नहीं हुई होती, मेरी बेटी नहीं होती और इतनी कम फिल्में नहीं होती।

विडंबना

प्रेमनारायण गुप्ता

बूढ़े माता-पिता से मत छीनिये उनके पोते-पोतियों का संसार

माता-पिता बहुत खुश थे कि उनका बेटा अच्छे से सैटल हो गया है। अब तो उसने मुंबई में अपना फ्लैट भी ले लिया है और बच्चों के साथ मजे से वहीं रह रहा है। माता-पिता अब काफी बूढ़े हो गए हैं और अक्सर बीमार रहते हैं। पेंशन के जिन रुपयों से गृहस्थी चल जाती थी अब वो कम पड़ने लगे हैं क्योंकि महंगाई, दवाएं और फलों का खर्च बजट बिगाड़कर रख देता है।

माँ ने फोन करके बेटे को घर बुलवाया तो वो छुट्टियों में पिता की बीमारी का हाल-चाल जानने चला आया। माता-पिता बेटे को देखकर बहुत खुश हुए और बहू और पोते-पोती को साथ न लाने पर नाराज भी हुए। आज बरसों बाद रसोई में कई चीजें एक साथ बनीं और बेटे को खूब खिलाया-पिलाया।

बेटे ने पिता से पूछा, ''अब तो दिल्ली में प्रॉपर्टी के दाम बहुत बढ़ गए हैं। अपना मकान कितने का चल रहा है?'' ये सुनकर पिता को अच्छा नहीं लगा और वो सुना-अनसुना कर गए। अगले दिन जाते हुए बेटा बोला, ''टेक केयर पापा।'' माँ की आँखें आँसुओं से भीग गईं। वे सोचती रहीं कि पापा तो कुछ कर नहीं पाते और मैं भी कुछ नहीं कर पाती ऐसे में भला केयर होगी तो कैसे? हू विल टेक केयर?

प्रश्न उठता है कि क्या मात्र टेक केयर कहने से ही माता-पिता की देखभाल हो जाती है? बुढ़ापे में पैसों की ही नहीं सेवा की भी जरूरत पड़ती है। कुछ लोगों की मजबूरी हो सकती है जिसके कारण वे अपने माता-पिता के पास नहीं रह सकते अथवा उन्हें साथ नहीं रख सकते लेकिन माता-पिता को तो उनकी जरूरत है। क्या बचपन में माता-पिता किसी विवशता के कारण अपने बच्चों को अपने से कभी दूर होने देते हैं?

प्राय: सभी माता-पिता बच्चों के लिए हर प्रकार के समझौते करने को तैयार रहते हैं फिर उनके बुढ़ापे में बच्चे क्यों नहीं कोई समझौता करने का प्रयास करते? कुछ लोग अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा तो नहीं कर पाते लेकिन उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक तंगी नहीं होने देते। ऐसे लोग उन लोगों से बेहतर हैं जिनके माता-पिता दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं लेकिन माता-पिता की सेवा करना भी तो बच्चों का ही फर्ज है। हम सब अपने फर्ज से कैसे मुँह मोड़ सकते हैं?

> **"कुछ लोग अपने बूढ़े माता-पिता की सेवा तो नहीं कर पाते लेकिन उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक तंगी नहीं होने देते। ऐसे लोग उन लोगों से बेहतर हैं जिनके माता-पिता दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं।"**

आज के आधुनिक शिक्षा प्राप्त तथा पाश्चात्य संस्कृति के पुजारी वैसे तो अपने बूढ़े माता-पिता को कभी पूछते नहीं लेकिन मदर्स डे और फादर्स डे पर उपहार भिजवाना नहीं भूलते। बूढ़े माता-पिता को महंगे उपहार नहीं देखभाल और प्यार की ज्यादा जरूरत है। सबसे बड़ी बात तो ये हैं कि उन्हें देखभाल की भी कोई खास जरूरत नहीं है। वास्तव में उन्हें जरूरत है अपने बच्चों के साथ की। बहू और पोते-पोतियों के साथ की। यदि उनकी बहू और पोते-पोतियां साथ होंगे तो उन्हें देखभाल की भी कोई जरूरत नहीं होगी अपितु वे ही उनके कामों में हाथ बंटा देंगे। परिवार का अभाव ही तो उनके दुख और बीमारी का कारण है।

एकल परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों में रहने वाले माता-पिता और बच्चे सभी अधिक स्वस्थ रहते हैं। साथ रहना सुरक्षा ही नहीं अच्छे स्वास्थ्य का भी मूल है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो माता-पिता के साथ तो रहते हैं और उनका पर्याप्त आदर-सम्मान भी करते हैं, उनके पैर छूते हैं लेकिन अपने बच्चों को उनके पास तक फटकने नहीं देते। मात्र दिखावे के लिए आदर-सम्मान भी पर्याप्त नहीं अपितु पूर्ण रूप से अपनेपन की जरूरत है।

दादा-दादी अपने पोते-पोतियों के साथ घुल-मिल कर रहें तभी उन्हें अच्छा लगेगा। दोनों एक दूसरे के साहचर्य से परस्पर लाभान्वित भी हो सकेंगे। बच्चे थोड़े बड़े होंगे तो अपने दादा-दादी का काम करेंगे और छोटे होंगे तो उनसे अपना काम करवायेंगे जिससे दादा-दादी अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यदि सचमुच अपने बूढ़े माता-पिता को स्वस्थ रखना है, उनकी सेवा करनी है तो उनसे उनके पोते-पोतियों का संसार मत छीनिये।

-ए.डी.-26-सी, पीतमपुरा
दिल्ली-110034

शास्त्रोक्ति

कभी-कभी समय के फेर से मित्र शत्रु बन जाता है और शत्रु भी मित्र हो जाता है, क्योंकि स्वार्थ बड़ा बलवान है।

—वेदव्यास

समाधान

मंजुला जैन

मानसिक शांति के नुस्खे

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। तनाव, संत्रास और थकान के बावजूद भी मन को कमजोर न होने देना और हौसलों को बुलंद रखना ही सबसे बड़ी कला है। यह कला जिन महिलाओं को आती हैं, वे हर हाल में खुश रहते हैं और जिन्हें नहीं आती, वे खुशनुमा माहौल में भी मायूस ही रहती हैं। मन से बना है मानस। इस भागती-दौड़ती जिंदगी में मानसिक शांति बरकरार रखने के कुछ अचूक नुस्खे इस प्रकार हैं :–

● **क्रोध को नियंत्रित करें:** क्रोध महिलाओं में ऐसा रोग है जो उन्हें आगे बढ़ने से रोकता है। एक घंटे का तीव्र क्रोध महिलाओं को मानसिक रूप से इतना थका देता है, जितना चौबीस घंटे की मेहनत भी नहीं थका पाती, अत: मानसिक संतुलन के लिए क्रोध को नियंत्रण में रखना परम आवश्यक है। तेज गुस्से से किड़नी या हार्ट की बीमारियाँ होने की आशंका रहती है, अत: इससे बचें। क्रोध शांत करने का सबसे अच्छा उपाय है कि आप उस स्थान से ही चले जाएँ, जहाँ आपका गुस्सा बढ़ रहा हो। अलग जगह जाकर अपने आपको व्यस्त कर लें। धीरे-धीरे क्रोध स्वत: शांत हो जाएगा।

● **शरीर स्वस्थ व मजबूत बनाएं:** जो महिलाएँ बीमारियों से मुक्त रहती हैं, उसमें शारीरिक शक्ति अधिक होती हैं, अत: कमजोरी नहीं रहती और मानसिक अवस्था का सबसे बड़ा कारण कमजोरी होती है। कमजोरी ही क्रोध, चिड़चिड़ाहट और भय के रूप में बाहर निकलती है, अत: मन को स्वस्थ रखने के लिए तन को स्वस्थ रखें, उचित व प्रोटीनयुक्त भोजन लें और शरीर की शुद्धि के लिए नियमित योगाभ्यास करें। प्राणायाम, शवासन आदि आसन शरीर व मन दोनों को स्वस्थ व शांत रखते हैं।

● **उत्साही बनें:** एक जैसा जीवन जीते-जीते या एक ही प्रकार के कार्यकलापों से जीवन की अभिरुचि ही समाप्त हो जाती है तथा मन निष्क्रिय हो जाता है। इससे बचने के लिए अपने जीवन में नए-नए रंग सजाएँ, बाहर घूमें, नई मित्रता करें, अच्छे कपड़े पहनें, अच्छी पुस्तकें पढ़े, अच्छा भोजन करें। इसके अतिरिक्त आपके अंदर जो भी कला छीपी हो, उसे बाहर निकालें। मसलन यदि आपकी पेंटिंग अच्छी हो तो रोज नए-नए चित्र बनाएँ। इसी तरह लेखन, सिलाई, गृहसज्जा आदि भी की जा सकती है।

● **भयरहित मन रखें:** महिलाओं में अकारण भय तनाव को जन्म देता है और तनावयुक्त मन कभी स्वस्थ नहीं हो सकता, अत: व्यर्थ के भय से मन को बीमार न बनाएँ। अगर ये हो गया तो? वो हो गया तो? आदि मिथ्या विचार महिलाओं को जबरदस्ती तनाव में रखते हैं, अत: उन बातों को जो बिना कारण आपको परेशान करती हों सोचना तुरंत बंद कर दें। वे महिलाएँ जो संभावित विचारों को भयावह बना देती हैं, कभी मानसिक स्वास्थ्य-सुख प्राप्त नहीं कर सकती हैं।

● **तनाव से बचें:** तनाव मन की वह स्थिति है, जिसमें महिलाएँ एक खास बोझ अपने मस्तिष्क पर ढोता रहता है, फलत: चेहरे की मुस्कुराहट गायब हो जाती है और चेहरा व दिमाग बेचैनी की सलवटों से युक्त हो जाता है। तनाव व चिंता करते रहना स्वत: बीमारियों को न्यौता देना है। आखिर हम चिंता क्यों करते हैं? यह तो सर्वविदित है कि सोचने से कोई समस्या का हल नहीं हो सकता। परेशानी कर्म करने से सुलझती है, अत: तनाव के बदले, प्रयास करें। सच्चाई से किया गया परिश्रम व्यर्थ नहीं होता। सफलता की सीढ़ी तक कदम अवश्य पहुँच जाएँगे, पर यदि सिर्फ चिंता करते रहें तो सिवाय थकावट, पाचन रोग, त्वचा रोग या हृदय रोग के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

● **आशा की अति न करें:** 'अति सर्वत्र वर्जते' इस नियम का पालन हर जगह करें। आशावान होना बुरा नहीं है, पर हर वस्तु से अत्यधिक आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि फिर यदि मनवांछित इच्छा पूरी नहीं होती तो जबरदस्त झटका लगता है, जिसका असर मन व शरीर दोनों पर पड़ता है। जितनी अधिक अपेक्षाएँ होंगी, उतनी ही अधिक शिकायतें बढ़ेंगी और उसी के अनुरूप क्लेश होगा, अत: उदार, दृष्टिकोण अपनाएँ।

● **बुरे विचार मस्तिष्क में न लाएं:** गंदे विचार दिमाग को थका देते हैं, जिसका प्रभाव पूरे शरीर में नजर आता है। हमेशा बूरी बातें, दूसरों का बुरा या गंदा सोचते रहने से कर्म भी वैसा हो जाते हैं और फिर परिणाम भी वैसा ही निकलता है, अत: यदि आप मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं तो शुभ चिंतन-मनन करें। अच्छा सोचें तो अच्छा ही होगा। ताने कसना, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, संकीर्णता आदि कायरता को छोड़कर उत्तम विचार अपनाएँ, शुभ-शुभ सोचें, हर घटना के शुभ पक्ष को ढूँढ़ें, मन अपने आप शुद्ध हो जाएगा।

● **खुश रहने की कला सीखें:** इस कला में जो प्रवीण होता है, मानसिक रोग उसके पास भी नहीं फटकते। प्रसन्न व्यक्ति की मानसिक रुग्णता, असंतुलन व विकृति स्वत: समाप्त हो जाती है। खुश रहने के लिए आवश्यक है कि आप अपना काम जोश और उमंग के साथ करें। व्यवहार मधुर रखें व नित नए दोस्त बनाएँ, उनकी गतिविधियों में भी रुचि लें। समस्याओं से घबराने के बजाय उसे चुनौती के रूप में स्वीकार करें। आत्मविश्वास व आत्मसम्मान बनाए रखने से मानसिक संतुलन अपने आप बन जाता है।

● **दूसरों की परवाह न करें:** हालाँकि ऐसा कर पाना जटिल होता है, लेकिन फिर भी ऐसा करने से आप पाएँगे कि आपकी आधी से अधिक मानसिक बीमारियाँ स्वत: खत्म हो जाएँगी। यह समाज विभिन्न स्वभाव के व्यक्तियों का मिश्रण है, अत: स्वाभाविक है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ भी अलग-अलग होंगी। यदि हर व्यक्ति की हर बात को आप सोचने बैठ गए, तब तो जीना ही मुश्किल हो जाएगा, अत: सुनें सबकी पर करें मन की, इसमें ही संतुष्टि है।

● **नींद पूरी लें:** अधूरी नींद से उत्पन्न थकावट मन को अस्वस्थ बना देती है। पूरी नींद लिया हुआ व्यक्ति तरोताजा व चुस्त नजर आता है। उसका दिमाग एकदम फ्रेश रहता है। ध्यान रहे, जब तन थक जाता है तो मन कार्य करता है और जब मन थक जाता है तो नींद आती है, अत: भरपूर नींद शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभवर्द्धक औषधि है। अच्छी नींद के लिए नियमित दिनचर्या रखें, रात को सुपाच्य भोजन लें, शयनकक्ष शांत व मोहक रखें। हाथ-पाँव आदि को ठंडे जल से धोकर सोएँ तो नींद स्वत: आ जाएगी।

● **ध्यान लगाएं:** कभी-कभी मन जब काफी अशांत हो जाए, दिमाग में हलचल मच रही हो तो ध्यान लगाकर बैठ जाएँ। वातावरण शांत व पवित्र रखें। दिमाग में किसी भी प्रकार के विचारों का आदान-प्रदान रोक दें। कुछ समय बाद आपको अवश्य राहत महसूस होगी। आवश्यक हो तो योगनिद्रा व ध्यान का अभ्यास नियमित करें। अचेतन मन के विकारों को दूर करने के लिए ये दोनों ही साधन अचूक हैं। इसके नियमित अभ्यास से चेतन व अचेतन मन की शुद्धि होती है। ■

विचार

आचार्य विजय वीरेन्द्र सूरि

मनुष्य जन्म को सार्थक करें

इस संसार और शरीर में बहुत सारी समानताएं हैं। संसार के कारण ही हम सामाजिक मान्यताओं एवं उसके मायाजाल से बंधे हैं। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य समाज से अलग नहीं रह सकता बल्कि यूं कहें कि मछली के लिये जिस प्रकार पानी अनिवार्य है उसी प्रकार मनुष्यों के लिये समाज।

संतों-महर्षियों ने बार-बार यह कहा कि संसार मिथ्या है, इसमें मत उलझो, इससे अलग रहकर काम करो, यह कैसे संभव है? जिस तरह कीचड़ में कमल रहता है, उसी तरह इंसान को संसार में रहकर संसार से पृथक रहना चाहिए। मनुष्यों को संसार में रह कर सांसारिक उलझनों अर्थात् राग-द्वेष से पैदा होने वाले समस्याओं से बचे रहना चाहिए। आखिर यह कैसे संभव है? इसके लिये जरूरी है कि हमारा जीवन ईश्वर की भक्ति में, स्वयं से स्वयं के साक्षात्कार में व्यतीत हो। मनुष्य शरीर के अलावा और कोई ऐसा शरीर नहीं है जिसमें भगवान की प्राप्ति संभव हो सके या स्वयं से स्वयं का साक्षात्कार किया जा सके। गोस्वामी तुलसीदासजी अपने पावन ग्रंथ श्रीरामचरितमानस में लिखा हैं कि मनुष्य जन्म ही एकमात्र ऐसा जन्म है जिससे मनुष्य सदा के लिए आत्यांतिक दुखों से मुक्त हो सकता है।

> **कहा गया है कि सौ काम छोड़कर भोजन करो, हजार काम छोड़कर स्नान करो, लाख काम छोड़कर दान दो और करोड़ों काम छोड़कर भगवान का स्मरण करो। तात्पर्य यह कि अगर करोड़ काम भी बिगड़ते हों तो बिगड़ जाएं, परन्तु भगवान का स्मरण नहीं बिगड़ना चाहिए।**

ऐसे दुर्लभ अवसर यानी मनुष्य जीवन को प्राप्त करके भी यदि आध्यात्मिक उन्नति यानि भगवान का स्मरण नहीं किया तो क्या किया? आध्यात्मिक तत्व की प्राप्ति हेतु हमें मनुष्य का शरीर मिला है। इसके अलावा मनुष्य-जन्म का क्या प्रायोजन है? फिर जीव चाहे कीड़ा-मकोड़ा बने, पशु-पक्षी बने या मनुष्य बने, उससे क्या अंतर पड़ता है।

कहा गया है कि सौ काम छोड़कर भोजन करो, हजार काम छोड़कर स्नान करो, लाख काम छोड़कर दान दो और करोड़ों काम छोड़कर भगवान का स्मरण करो। तात्पर्य यह कि अगर करोड़ काम भी बिगड़ते हों तो बिगड़ जाएं, परन्तु भगवान का स्मरण नहीं बिगड़ना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या जीवन-निर्वाह के कर्त्तव्य-कर्म छोड़कर भगवान का स्मरण-भजन किया जाए? इसका समाधान यह है कि जीवन के कर्त्तव्य-कर्म करना, परिवार का पालन-पोषण करना तथा न्यायानुकूल कर्म करना अच्छा कार्य है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है परन्तु नीति श्लोक का भाव यह है कि जिनभगवत स्मरण के आगे सभी काम गौण हो जाते हैं। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि हम कर्त्तव्य-कर्मों का परित्याग कर दें। हम कर्त्तव्य-कर्म अवश्य करें परन्तु मानव जीवन के परम-चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति को केन्द्र में रखकर भगवान के नाम स्मरण को यथोचित प्राथमिकता प्रदान करें। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि संसार के समस्त पदार्थ और कार्य नश्वर हैं उसके जितने भी काम हैं वे सब-के-सब एक दिन बिगड़ने वाले हैं। केवल मात्र तीर्थंकर वाणी ही नित्य और अनिश्वर है जो ही संसार सागर को पार करने की जरिया है। संसार का कितना भी सुधार कर लो वह तो बिगड़ा हुआ ही रहेगा। लेकिन मनुष्य-जन्म की सफलता तो मोक्ष प्राप्ति एवं पवित्र जीवन में निहित है।

हमारी जैन साधना पद्धति में दो शब्द आते हैं- भाव क्रिया और द्रव्य क्रिया। जिस प्रवृत्ति में हमारी चेतना जुड़ जाती है, वह प्रवृत्ति भाव क्रिया हो जाती है। नवकार मंत्र की माला फेर रहे हैं और ध्यान इधर-उधर संसार की बातों में, खाने-पीने, भोगने या अन्य विकल्पों में भटक रहा है तो उस माला फेरने का कोई फायदा नहीं होगा। धर्मशास्त्रों का कथन है कि समस्त कर्त्तव्यों का मूल कर्त्तव्य है-भगवान का स्मरण पूर्ण जागरूकता एवं एकाग्रता से करना।

वन गमन की अवधि पूरी होने के पश्चात् अयोध्या लौटते समय भगवान राम अपने प्रिय भक्त हनुमान के प्रति कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए बोले- ''हे हनुमन्त! आपने हमारे लिए भारी कष्ट उठाये हैं। अपने प्राणों को जोखिम में डालकर आपने अनेक बार हमारी सहायता की है। हम आपके ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। सात समुंदर पार करके आपने मेरी भार्या सीताजी की खोज की, दूरस्थ स्थान से संजीवनी लाकर लक्ष्मण भइया के प्राण बचाये, लंका में आग लगाकर रावण को हमारी शक्ति का जलवा दिखाया, अहिरावण के बंधन से मुक्त कराकर हमारी जान बचाई। यदि आप न होते तो आज हम अयोध्या नहीं लौट सकते थे। इसलिए आप पर जब कभी कोई विपत्ति आये तो मुझे अवश्य याद कर लेना। आपके कर्ज का थोड़ा सा अंश चुका कर मैं अपने आपको धन्य समझूंगा।''

प्रभु राम के अनन्य भक्त हनुमंत लाल जी ने बड़े सहज भाव से उत्तर देते हुए कहा- ''हे भगवन! मुझ पर भी कभी-कभी विपत्ति आती है जब-जब आपका सुमिरण-भजन नहीं होता। आप इतनी कृपा करें कि मैं इस विपत्ति से बचा रहूं।' प्रेमासक्ति से भरे हनुमानजी के यह मधुर वचन सुनकर प्रभु राम प्रसन्नता से गद्गद् हो गये, नेत्रों में प्रेमाश्रुओं का सैलाब उमड़ पड़ा, गला रूंध गया। हनुमानजी को हृदय से लगाते हुए प्रभु राम ने आश्वस्त किया कि हनुमन्त ऐसा ही होगा।

जरा विचार करें कि एक तरफ तो हनुमानजी जैसे भक्त हैं जो एक क्षण के लिए भी प्रभु के विस्मरण को जीवन को सबसे बड़ी विपत्ति मानते हैं और दूसरी तरफ हम लोग हैं जो आठों पहर जगत के स्मरण में रमण करते रहते हैं फिर भी समय की कमी का रोना रोते रहते हैं। यह अज्ञान की परकाष्ठा नहीं तो और क्या है? आश्चर्य की बात तो यह है कि आज के भौतिकवादी तथा अर्थ प्रधान युग में मनुष्य इतना अधिक व्यस्त हो गया है कि उसके पास प्रभु के स्मरण के लिए समय ही नहीं है।

भगवान ने अर्जुन का सारथी व सुदामा का दीनबन्धु बनकर यह जता दिया है कि वह हमारा सबसे प्रिय मित्र है जो विपत्ति में पूरा साथ देता है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें उस पर विश्वास नहीं है और इसीलिए हम दुख पा रहे हैं।

भगवान ने मनुष्य को विवेकशक्ति दी है। उस विवेक शक्ति का सदुपयोग कर मनुष्य अपने जीवन को सार्थक बनावें। क्योंकि यदि वह स्वर्णिम अवसर हमारे हाथ से निकल गया तो चौरासी लाख भवों-योनियों में भटकते रहेंगें और हमें पुनः यह मनुष्य भव का अवसर न जाने कितने जन्मों में भटकने के बाद प्राप्त होगा। ■

JATF

Announces Golden Opportunity to bright Young Graduates to become a Successful Civil Service Top Class Officer

Providing FREE Coaching & Residential Facilities to train Youth to succeed in the competitive exams conducted by UPSC and States PSC to become IAS/IFS/IPS/IRS etc. and State Administrative Officers
Our Training Centers : Delhi, Pune, Chennai, Jaipur, Indore & Ahmedabad.

Benefits to Students

- Privilege of service to Nation
- Advantage of Higher designated post in India
- Empowerment and guidance for Trade, Technology and Industries
- Contribution to Clean, Non-Violent and Good governance

Eligibility

- Bright & brilliant Graduate in any stream
- Preference to Post-Graduate and Professionals, like : Engineers, Doctors, MBAs, C.A.s etc.

Facilities

- Fully Furnished Residential Accommodation
- Hygienic and Nutritious Food
- Computer Lab
- Well Equipped Library
- Coaching Facilities
- Career Counseling
- Group Discussions

Application form for registration is available at following addresses and can be dowload from our website : www.jitoatf.org

JITO Administrative Training Foundation

JATF-Apex Office : 901, Corporate Avenue, Sonawala Road,Goregaon East, Mumbai -400 063

Registration forms can be sent at any of the following Address

Mumbai
901, Corporate Avenue
Nr. Udyog Bhavan, Sonawala Road,
Goregaon (E),
Mumbai - 400063

Delhi
WZ-No.6, VC-12, Galli No.10
Near Gurudwara, Virendra Nagar,
Tilak Nagar,New Delhi -110058

Chennai
1038, 26th Street,
Ponni Colony.
Annanagar, Chennai - 600040

Pune
1st Floor,
Oswal Bandhu Samaj Building,
Shankar Seth Road,Pune - 411042

Jaipur
88, Paras, Neelkant Nagar,
Purani Chungi,
Queens Road, Jaipur - 302021

For any query / clarification, please contact :
Mumbai – 9819849764 (Anil Jain) and Delhi – 9958606797 (Pramode Jain)
Email:info@jitoatf.org

विवेचन

साध्वी कल्परसाश्री

घर को स्वर्ग बनाती है नारी

नारी सृष्टि की वह इकाई है जिसे जीवन के हर पड़ाव पर जागरूक प्रहरी की तरह जीना होता है। उसका कर्तव्य और दायित्व ईमानदार प्रयत्नों के साथ जब सृजनात्मक दिशा में बढ़ता है तो वह अनगिनत सफलता के शिखर छू लेती है। मगर जहां भी जिम्मेदारी का पक्ष कमजोर या निरपेक्ष बना, हर सुख-दुख में बदल जाता हैं संघर्षों से उसका व्यक्तित्व और कर्तव्य घिर जाता है। इसलिए नारी को अपने कार्यक्षेत्र में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। आंधी आने से पहले ही उसे अपने घर के दरवाजे बंद कर लेने जरूरी है ताकि घर का आंगन गंदा न हो। अत: हमें अपने आस-पास के दायरों में खड़ी नारी को देखना होगा और यह तय करना होगा कि घर, समाज और संघ की भूमिका पर नारी के दायित्व की सीमाएं क्या हो?

जिस घर में नारी सुघड़, समझदार, शालीन, शिक्षित, संयत एवं संस्कारी होती है वह घर स्वर्ग से भी ज्यादा सुंदर लगता है क्योंकि वहां प्रेम है, सम्मान है, सुख है, शांति है, सामंजस्य है, शांत सहवास है। सुख-दु:ख की सहभागिता है। एक-दूसरे को समझने और सहने की विनम्रता है।

नारी अनेक रूपों में जीती है। वह मां, पत्नी, बहन, भाभी, सास, ननद, शिक्षिका आदि अनेकों दायरों से जुड़कर संबंधों के बीच अपनी विशेष पहचान बनाती है। उसका हर दायित्व, कर्तव्य, निष्ठा और आत्मधर्म से जुड़ा होता है। इसीलिए उसकी सोच, समझ, विचार, व्यवहार और कर्म सभी पर उसके चरित्रगत विशेषताओं की रोशनी पड़ती रहती है। वह सबके लिए आदर्श बन जाती है।

नारी अपने घर में अपने आदर्शों, परम्पराओं, सिद्धांतों, विचारों एवं अनुशासन को सुदृढ़ता दे सकें, इसके लिए उसे कुछेक बातों पर विशेष ध्यान देना होगा। नारी अपने परिवार में सबका सुख-दु:ख अपना सबके प्रति बिना भेदभाव के स्नेह रखे। संबंधों की हर इकाई के साथ तादात्म्य संबंध जोड़े। घर की मान-मर्यादा, रीति-परम्परा, आज्ञा-अनुशासन, सिद्धांत, आदर्श एवं रुचियों के प्रति अपना संतुलित विनम्र दृष्टिकोण रखे। अच्छाइयों का योगक्षेम करे एवं बुराइयों के परिष्कार में पुरुषार्थी प्रयत्न करें। सबका दिल और दिमाग जीतकर ही नारी घर में सुखी रह सकती है।

घरेलू कार्य में सहयोगिता एवं सहभागिता दे। कार्यों को बांटने की अपेक्षा मिलकर कार्य करने की शैली डाले। सफलता का श्रेय औरों को दे और भूलों की जिम्मेदारी स्वयं ओढ़े। घर में छोटी-छोटी बातों पर उलझे नहीं, वैचारिक वैषम्य पैदा न करे। स्वयं को सही औरों को गलत मानने का अहं न जगाए। आग्रही सोच को प्रश्रय न दे। सबको समझे, सबको सहे।

घर की आर्थिक व्यवस्था को संतुलित रखें। न अनावश्यक संग्रह करें और न अनावश्यक अपव्यय। प्रदर्शन, दिखावा, झूठी शान-शौकत से बचें। जो नारी अपने घर में आय-व्यय की तुला के पलड़े संतुलित रखती है वह घर बनाती है। घर को योगक्षेम देती है।

बच्चों पर विशेष नजर रखें, उन्हें सद्-संस्कार से आप्लवित करें। शिक्षा और ज्ञान की उपयोगिता समझाए। पाश्चात्य संस्कृति के प्रवाह से दूर रखे। उन पर अपना अनुशासन, आदर्श, सिद्धांत, इच्छाएं थोपे नहीं, सिर्फ भले-बुरे का विवेक जगा दें ताकि वे स्वयं अपने करणीय के संदर्भ में सही निर्णय ले सकें।

घर में बड़ों को सम्मान और छोटों को प्यार देना नारी का दायित्व है। इसलिए वह सबके साथ समान व्यवहार रखे। वह अपनी व्यवहार कुशलता, शालीनता, सहज सौम्यता एवं मधुर संभाषण से सबका मन जीत ले। क्योंकि घर में शांत सहवास की सर्जना स्वयं नारी ही करती है।

नारी में पुरुष के साथ प्रतिस्पर्धा न जागे। वह स्वयं को हीन न माने मगर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की दौड़ में इतनी तेज भी न दौड़े कि प्रतियोगिता जीतने से पहले ही उसके सतरंगी सपने टूटकर बिखर न जाएं। हम कदम बनकर चले तो उसका कर्तृत्व आर्थिक संतुलन दे सकता है। परिवार संचालन में सहभागिता जुड़ सकती है। क्षमताओं का सही मूल्यांकन हो सकता है और पारस्परिक प्रेमानुबंध में प्रगाढ़ता सुरक्षित रह सकती है।

परिवार की धुरी है नारी, इसलिए नारी अपने कर्तृत्व को ऐसा रूप दे ताकि परिवार की हर इकाई उस पर गर्व कर सके।

व्यक्ति के विकास का सही आईना है समाज। समाज में ही व्यक्ति की पहचान होती है। क्योंकि बिना समाज व्यक्ति स्वयं में अधूरा है। अत: नारी की समाज के परिप्रेक्ष्य में क्या सोच हो, क्या दायित्व हो, इसका विचार-विमर्श भी युगीन संदर्भों में आवश्यक है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सभा-संस्थाओं से जुड़कर हम उनके कार्यों को गति दें। अच्छाइयों को प्रोत्साहन दे, बुराइयों के विरुद्ध जेहाद छेड़े। हम सहयोग दें, समक्षी-समालोचना करें मगर अपने निजी स्वार्थों के तहत संस्था की न आलोचना करें, न विरोध जताएं और न विवाद खड़ा करे। पारस्परिक सामंजस्य एवं सहभागिता के साथ समाजसेवा में अपना योगदान देना ही नारी की उदात्तता का प्रतीक है।

नारी जिस समाज में रहती है, उस समाज की रीति-नीति, परम्पराएं, गतिविधियां, मानदण्ड, धारणाएं सोच और शैली से अवगत होना, उसके लिए जरूरी है, क्योंकि समुद्र में रहकर हम मगरमच्छ से बैर नहीं रख सकते। समाज में रहते हुए समाज से कटकर अकेले नहीं जी सकते। इसलिए नारी का दायित्व है कि वह समाज की धूप-छांव के साथ जीना सीखे। नारी समाज से जुड़े। शिक्षा, चिकित्सा एवं आजीविका से वंचित लोगों को रचनात्मक सहयोग दे। अर्जन के साथ विसर्जन चेतना का विकास करे। ताकि संगठन सक्षम एवं सृजनशील बन सके। स्वस्थ समाज की संरचना में नारी अपने कर्तृत्व का उपयोग करे। खान-पान की शुद्धता पर ध्यान दे। व्यसनमुक्त समाज की तस्वीर बनाए। रूढ़ियों को मुक्त रखे। आडम्बर, प्रदर्शन, दिखावों की चकाचौंध न फैलने दे। नारी का हर कदम खतरों से भरा है। संघर्षों के बीच उसे सृजन का रास्ता खोलना है। ■

शख्सियत

पी. डी. सिंह

गुरुदेव टैगोर का शिक्षा दर्शन

बहुआयामी कृतित्व के आधार पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को विश्व कवि, दार्शनिक, चित्रकार, संगीतज्ञ, शिक्षाविद और साहित्यकार अनेक रूपों में जानता है। वे इतने महान कवि थे कि उनके गीत-संग्रह 'गीतांजलि' को विश्व के सर्वोच्च सम्मान नोबल पुरस्कार से नवाजा गया। उन्हें रवीन्द्र संगीत के सर्जक के रूप में भी जाना जाता है और गद्य, नाटक, उपन्यास एवं दर्शनशास्त्र के लेखक के रूप में भी उनका प्रतिष्ठित स्थान है।

इन सबके अतिरिक्त उन्हें महान शिक्षाविद के रूप में भी जाना जाता है। उनकी शैक्षिक विचारधारा की पृष्ठभूमि है उनकी दार्शनिक सोच। वे प्रकृति को शिक्षा का आधार मानते थे क्योंकि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का आधार समग्र प्रकृति ही है। उनकी मान्यता थी कि शिक्षण संस्थान प्रकृति के जीवंत वातावरण में अवस्थित होना चाहिए। समग्र शिक्षा प्राकृतिक वातावरणं में दी जानी चाहिए, तभी बालक का प्रकृति एवं वातावरण से एक संबंध एवं सामंजस्य स्थापित होता है। उनकी आस्था थी कि मानव, प्रकृति एवं ईश्वर तीनों पूर्ण संतुलन एवं समरसता से सम्बद्ध हों। उनके मतानुसार सही और सच्ची शिक्षा वही है जो मानव को सक्षम कर दे कि वह अपने पूरे अस्तित्व के साथ वातावरण से एक रूप हो सके। साहसिक कदम उठाने के लिए भी शिक्षा ही प्रमुख है। शिक्षा वही है जो निर्भीकता एवं साहस से संपूरित कर सके।

अत: व्यक्तित्व विकास एवं जीवन को जीने की तैयारी ही लक्ष्य होना चाहिए। बच्चों के लिए प्रकृति सबसे उत्तम पुस्तक एवं श्रेष्ठ शिक्षक है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् एवं आनंद की शिक्षा प्रकृति के सामीप्य एवं मैत्री से सरलता से सीखी जा सकती है।

उन्होंने अपने इस शिक्षा दर्शन को शान्ति निकेतन के रूप में मूर्त रूप दिया और शांति निकेतन विकसित हुआ विश्वभारती के रूप में जहां संसार के कोने-कोने से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। यह शिक्षा का एक गुरुकुल बन गया।

उनकी शैक्षिक विचारधारा अपने आप में आदर्श है। वे चाहते थे कि व्यक्ति और समाज में अंतरंग संबंध एवं संलग्नता हो और विश्व से समरसता हो। उनकी दृष्टि में शिक्षा की गुरुकुल प्रथा ही सर्वोत्तम है।

उनकी मान्यता थी कि एक विद्यालय को प्रयोगशाला होना है जहां प्रयास एवं प्रयोग करके जीवन को जीने का सर्वोत्तम तरीके का परीक्षण और प्रशिक्षण हो। शिक्षा उपयोगी एवं उद्देश्यनिष्ट तभी हो सकती है जब यह जीवन को समग्रता में स्वीकारे। वे कहते थे, ''हम बच्चों के मस्तिष्क में सूचनाएं उड़ेल रहे हैं और जीवनमूल्यों, अनुभव एवं अध्यात्म की अवहेलना करते हैं। वे अनुशासन में बच्चों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे। अनुशासन थोपा नहीं जाए अपितु अन्तप्रेरित हो। आजादी और अनुशासन में उचित संतुलन हो। शिक्षा का उद्देश्य है मस्तिष्क को उन्मुक्त करे लेकिन साथ ही चुनौतियों का सामना एवं दायित्व निर्वाह का पूरा ध्यान हो। थोपा गया अनुशासन बच्चों की कोमल भावनाओं एवं कल्पनाओं को आघात पहुंचाता है। उनके अनुसार शिक्षा को क्रियात्मक होना चाहिए। वे कर्मकाण्ड एवं आडम्बर के विरोधी थे।

टैगोर के अनुसार जो अध्यापक स्वयं सीखना बंद कर देता है वह बच्चों को पढ़ाने की क्षमता खो देता है। शिक्षक को तो ज्ञान का झरना होना है प्रवहमान, गतिमान एवं निर्मल। एक दीपक दूसरे दीपक को तभी प्रज्ज्वलित कर सकता है जबकि वह स्वयं प्रकाशमान हो।

गुरुदेव यह भी कहते हैं कि सत्य की शिक्षा निष्फल एवं प्रवाहहीन होती है। यदि शिक्षक स्वयं सत्यनिष्ठ न हो, जिसका आचरण सत्य से सम्बद्ध न हो। नैतिकता तो पढ़ाये जाने की अपेक्षा वातावरण से ग्रहण की जाती है। समग्र विद्यालय के वातावरण का प्रभाव कक्षा में पढ़ाये गये नैतिकता के पाठों से कहीं अधिक प्रभावी होता है।

गुरुदेव की मान्यता है कि शिक्षा के प्रमुख एवं विशिष्ट उद्देश्य होने चाहिए बालक का व्यक्तित्व विकास, आदर्श नागरिकता, बुद्धि का विकास, चरित्र, आर्थिक विकास, मानवीयता एवं समाजीकरण। वे शिक्षा में निम्न स्टेप्स पर जोर देते थे-क्रियात्मकता, अपेक्षित स्वतंत्रता, गतिशीलता, उल्लास, वास्तविकता, मनोवैज्ञानिक पहलू, प्रत्यक्ष के द्वारा शिक्षा, अन्वेषण, प्रयोगवाद, सृजनशीलता, कला-उद्योग, संगीत पर्यटन/भ्रमण एवं प्रसन्नता का वातावरण। पाठ्यक्रम को व्यापक और जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ा हुआ होना है। विद्यालय परिसर का वातावरण एवं स्कूल का टोन भी पाठ्यक्रम का ही भाग है। प्रकृति भी एक पाठ्य पुस्तक ही है।

> **गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षादर्शन वैश्विक प्रेम, समझ एवं मानवीयता का था। उन्होंने 'शांति निकेतन और विश्वभारती' द्वारा पूर्व एवं पश्चिम को एक-दूसरे के समीप लाने का प्रयास किया।**

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षादर्शन वैश्विक प्रेम, समझ एवं मानवीयता का था। उन्होंने 'शांति निकेतन और विश्वभारती' द्वारा पूर्व एवं पश्चिम को एक-दूसरे के समीप लाने का प्रयास किया।

इस महामानव एवं कालजयी कवि गुरु को नमन करते हैं कि उन्होंने हमारे जीवन को उद्देश्यपूर्ण ढंग से जीने की रोशनी दी, राह बताई। वे एक मनीषी एवं महान शिक्षाविद थे।

-निदेशक, टैगोर ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूशन्स
शास्त्रीनगर, जयपुर (राजस्थान)

सत्संग

श्री रमेशभाई ओझा

भगवान को समर्पित हो हमारा हर कर्म

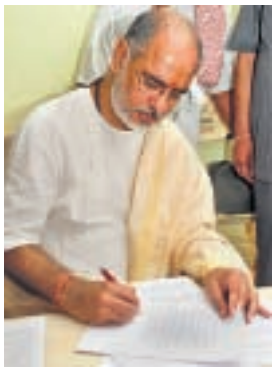

यह बात सबको हमेशा ध्यान रखनी चाहिए कि परमेश्वर की पूजा अपने कर्म से करनी चाहिए। हमारा प्रत्येक कर्म भगवान को समर्पित हो। कर्म करने से पहले यह सोचो कि क्या मेरा यह कर्म भगवान को प्रसन्न करेगा? किसी की निन्दा अथवा हिंसा से परमात्मा खुश होंगे? हमारे ऋषियों व संतों ने बड़ी गहराई से अच्छे कर्मों पर चिंतन किया है। उनके अनुसार पुण्य कर्म और पाप कर्म की हमारी जो समझ है, इसमें हिंसा करना पाप है। झूठ बोलना पाप है, बेईमानी करना पाप है। अरे! पापों की जो सूची है उसमें हमारे ऋषि-मुनियों ने पर्यावरण का भी ख्याल रखा है। इसलिए पाप की सूची में अकारण वृक्ष काटने को भी पाप माना गया है।

तो देखिए, यह कितनी संवेदनशील विचारशीलता है। विचारशील संवेदना और विचारहीन संवेदना में भेद है। विचारशील संवेदना करुणा पैदा करती है, पर विचारहीन संवेदना किसी काम की नहीं। मनुष्य के हृदय परिवर्तन के लिए विचारशीलता और संवेदनशीलता दोनों का समन्वय जीवन में होना चाहिए। दोनों का समन्वय करके जो कर्म करेंगे, वह सामने वाले के हृदय को छू लेगा, उसके जीवन को बदल डालेगा।

मनुष्य का विकास तभी संभव है जब उसकी विचारशीलता, संवेदनशीलता पर टिकी हो। इसलिए दिल और दिमाग दोनों की आवश्यकता है। लेकिन दोनों में संतुलन होना चाहिए। जब विचार और भावना का संतुलन करके तुम कर्म करोगे, तो तुम्हारे भी भीतर एक लय, एक संवाद कायम होगा, एक हार्मनी पैदा होगी और तुम्हारा जीवन प्रेम और संगीत से भर जाएगा। तुम्हारे जीवन में शांति रहेगी, आनंद रहेगा, मस्ती रहेगी। फिर जीवन बोझ नहीं, तुम खिले हुए गुलाब की भांति मुस्काराओगे, उन्नति और विकास की ओर अग्रसर होगे। और सच मानिए तो यही धर्म है। और यदि हमारे जीवन में न संगीत होगा, न खुशी, न मस्ती और न मुस्कराहट होगी तो फिर हम जो भी कर रहे हैं, जैसा भी कर रहे हैं, वह सब अधर्मरूप है। इसलिए भगवान ने गीता में कहा है कि अपने कर्म को भगवान से युक्त होकर करो। तदर्थ कर्म परमात्मा को निमित्त बनाकर भगवान से युक्त होकर करो। तदर्थ कर्म परमात्मा को निमित्त बनाकर भगवान से युक्त होकर करो। पहले विचार करो कि मेरे इस कर्म से भगवान प्रसन्न होंगे क्या? मैं निंदा करूंगा, किसी का बुरा चाहूंगा, किसी को गिराने की भावना रखूंगा, हिंसा करूंगा तो भगवान प्रसन्न होने वाले नहीं हैं। इसलिए पहले यह सोचो कि भगवान को प्रसन्न करने वाला मेरा कर्म है कि नहीं? कर्म में आगे सोचो तो दूसरी बात होगी मुक्तसंग हो के कर्म करना। जो कर्म करो वह संग यानी आसक्ति से मुक्त होकर करो। कैसी आसक्ति? फल की आसक्ति। आसक्ति के बारे में सूक्ष्म सोचने पर यह देखने को मिलेगा कि जो आसक्ति है, वह जा भी सकती है। आसक्ति है ही हटाने लायक चीज। छोड़ो, उसे जाने दो, उसे मिटाओ क्योंकि जहां भी आसक्ति आई वहां आग्रह आएगा ही। आग्रह की मां का नाम है आसक्ति। जहां भी आसक्ति आएगी वहां उसका लाड़ला बेटा आएगा ही। और जहां आग्रह आया, वहां तनाव रहेगा। तनाव आग्रह के साथ जुड़ा हुआ रोग है। और तनाव के प्रभाव से तुम जीते हो तो कहीं न कहीं तुम गलती कर दोगे। फिर दिमाग का संतुलन बिगड़ेगा, वाणी का संयम चला जाएगा, तुम अनाप-शनाप बोलने लगोगे, तुम गुस्से से भर जाओगे और जब तुम क्रोधित होकर कर्म करोगे, तो तुम हारते जाओगे, खोते चले जाओगे। इसलिए मुक्तसंग बनकर आसक्ति को छोड़कर कर्म करना चाहिए। लगाव एक अच्छा साधन है,

लेकिन हम चिपट गए तो वह आसक्ति बन जाती है और हम आसक्ति के गुलाम हो जाते हैं।

हम साधक हैं और आसक्ति साधन है, लेकिन होता यह है कि हम साधक मिट जाते हैं और उसके साधन बन जाते हैं। क्रोध को साधन बनाओ तब तक ठीक है, लेकिन समस्या यह है कि हम क्रोध के साधन बन जाते हैं। तुम मोटरकार को चलाते हो तो उसे अपने कंट्रोल में रखते हो, पर जब तुम्हारे नियंत्रण से बाहर हो जाती हे तब दुर्घटना की आशंका बढ़ती है। ■

ट्यूमर से निजात दिलाएगा गाजर

गाजर और शकरकंद स्तन कैंसर के इलाज में मददगार साबित हो सकते हैं। एक नए शोध के मुताबिक, गाजर और शकरकंद में पाया जाने वाला अम्ल रेटिनॉइक एसिड महिलाओं में स्तन कैंसर की कारक कोशिकाओं के विकास, प्रसरण और जीवन को प्रभावित करने वाला रसायन त्वचा को फिर से युवा बनाने के काम आ सकता है। इस रसायन की एक छोटी मात्रा एंटी रिंकल (झुर्रियां मिटाने वाली) क्रीम में भी इस्तेमाल की जाती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि अनुसंधान का लक्ष्य इस तरह के रसायनों की मदद से कैंसर का इलाज खोजना है।

-निकेश जैन, मुंबई

संगीता शुक्ला

सालंगपुर के कष्ट हरने वाले हनुमानजी

सालंगपुर का मंदिर करीब 150 वर्ष पुराना है और इसकी स्थापना मानो श्रद्धालुओं का कष्ट हरने के लिए ही की गई है।

हनुमान यानी कष्टों को दूर करनेवाले ... कहा जाता है कि किसी भी विकट परिस्थिति में यदि हनुमानजी का स्मरण किया जाए तो वे आपको उससे मुक्ति दिलाते हैं। इस बात के कई प्रमाण मिले हैं। ऐसा ही एक विख्यात और कष्ट निवारक मंदिर गुजरात के सालंगपुर में स्थित है, इस मंदिर की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई है।

इस मंदिर में भूतप्रेत या अनिष्ट तत्वों से पीड़ित व्यक्ति अपने कष्ट निवारण के लिए आते हैं और खुशी-खुशी वापस जाते हैं। कष्ट निवारण के लिए मंदिर चमत्कारी माना जाता है। अहमदाबाद के धंधुका तालुका में सालंगपुर गांव में बने इस मंदिर के बारे में कहा जाता है कि भूत-प्रेतात्मा से पीड़ित यदि एक बार भी सालंगपुर हनुमानजी के दर्शन कर ले तो उन्हें पीड़ा से मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं मानसिक विकलांग लोग और मंद बुद्धिवाले लोग भी इस मंदिर में हनुमानजी के दर्शन का अवश्य लाभ लेते हैं। यहां जाति बंधन नहीं है, किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति खरे दिल से हनुमानजी के दर्शन कर सकता है और दु:खों से छुटकारा पा सकता है।

खासतौर पर काली चौदस (दिवाली से एक दिन पहले–छोटी दिवाली) के दिन मंदिर में हनुमानजी के आशीर्वाद लेने के लिए भक्तों की जनमेदिनी उमड़ पड़ती है। कहा जाता है कि भूत-प्रेतात्मा से पीड़ित व्यक्ति जैसे ही मंदिर के परिसर में पांव रखता है वैसे ही यहां का परिसर कांपने लगता है, हिलने लगता है और हनुमानजी की मूर्ति के दर्शन मात्र से ही वह भाग जाता है। इतना ही नहीं मंदिर में सतत फैलता रहता धुंआ श्वास से अंदर जाते ही और मंत्रों से उच्चारण से भूत-प्रेत हमेशा के लिए भाग जाते हैं। यदि कोई भूतप्रेतादिक ज्यादा मलिन हो और आसानी से भागे ऐसा न हो तो लकड़ी से जिसे शिक्षा दंड कहा जाता है, उसे पानी में भिगोकर फिर वह पानी पिलाया जाता है और पानी पीते ही उसे भूत को कष्ट होने लगता है और वह भाग जाता है।

सालंगपुर का मंदिर करीब 150 वर्ष पुराना है और इसकी स्थापना मानो श्रद्धालुओं का कष्ट हरने के लिए ही की गई है। कहा जाता है कि आज से 150 साल पहले सालंगपुर में अति भयंकर अकाल पड़ा था। प्राणी हो या मनुष्य पानी के बिना सभी की हालत दयनीय थी। ऐसा प्रतीत होता था कि इस अकाल में सभी सालंगपुरवासी मर जायेंगे। सालंगपुर की इस विकटभरी स्थिति को जानकर बोटाद के श्री गोपालानंद स्वामीजी को बहुत दु:ख हुआ। उन्होंने सालंगपुर से पत्थर लाने को कहा और उस पत्थर में कोयले से हनुमानजी की मूर्ति बना दी। स्वामीजी इस हनुमानजी की मूर्ति को शिल्पकार के पास खुदवाकर सालंगपुर ले गये। विक्रम संवत 1906 (1850 ए.डी.) आसो सुदी पंचमी के दिन विद्वान ब्राह्मणों की मदद से व्यवस्थित पूजाविधि के साथ दरबार वाघा खाचर की जमीन में मूर्ति की स्थापना की गई। स्वामी गोपालानंद के मुख्य शिष्य शुक्रमुनि ने आरती की और स्वामी गोपालनंद संपूर्ण आरती के समय मूर्ति की आंखों में आंखे डालकर खड़े रहे।

आरती के पांचवें चरण में हनुमानजी की मूर्ति हिलने लगी। आरती में सम्मिलित सभी भक्तों को मूर्ति में ईश्वर की हाजरी का आभास होने लगा। तब स्वामीजी ने अपने तेज का प्रत्यर्पण करना बंद किया और लोगों के कष्ट दूर हो सके ऐसी शक्ति प्रदान की। तब से यह मूर्ति भक्तों के कष्ट दूर करने लगी और सालंगपुर के हनुमानजी का नाम कष्टभंजन पड़ गया। अधिक से अधिक श्रद्धालुजन इस मंदिर का लाभ उठा सके इसलिए इस मंदिर को विशाल मंदिर में परिवर्तित किया गया है। हनुमान जयंती के दिन यहां यज्ञ किया जाता है एवं अनेक श्रद्धालु हनुमानजी के दर्शन के लिए दूर-दूर से आते हैं। मंदिर की धर्मशाला में रहने व खाने-पीने की सुविधा है।

–ऑफिसर क्वाटर्स नं. 14,
गुजरात भवन, कौटिल्य मार्ग,
चाणक्यपुरी, नई दिल्ली

गांव में जनतंत्र

अरुणा राय

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में निहित संभावनाएं अब स्पष्ट दिखने लगी हैं। यह ग्रामीण विकास के साथ पर्यावरण संरक्षण में भी उपयोगी भूमिका निभा रही है। राजस्थान में इसके तहत सौंपे गए कार्यों में जल संरक्षण भी प्रमुख रूप से शामिल है। इसकी खासियत है कि यह जमीनी स्तर पर जनतंत्र को मजबूत कर सकती है, क्योंकि इसने विकास में आम आदमी को सीधे भागीदार बनाया है। हां, कार्यों के आवंटन में अनियमितता और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने की जरूरत है। इसके अंतर्गत पंचायतों में खूब पैसा आ रहा है, हमें कोशिश करनी होगी कि फंड का दुरुपयोग न हो।

हम यह कोशिश कर रहे हैं कि श्रमिकों को ठीक उनके काम के अनुपात में भुगतान हो। कई जगहों पर तो काम करने वाले और न करने वालों के बीच कोई विभाजक रेखा ही नहीं थी। हमने एक टास्क-बेस्ड-सिस्टम का सुझाव दिया है जिसके तहत एक श्रमिक समूह अपना कार्य खत्म कर घर जा सकता है।

चिंतन

आचार्य श्री विद्यासागर

अहिंसा–धर्म है वृक्ष की तरह

रथ आगे बढ़ता जा रहा है। अश्व गतिमान है। गंतव्य तक पहुंचना है। मंगल का अवसर है। जीवन में वह अवसर, वह घड़ी एक ही बार आती है। उस घड़ी की प्रतीक्षा में लाखों जनता लगी हुई है। यात्री पथ में है और अबाधित पथ को लांघता हुआ चला जा रहा है। अपने मनोरथ की पूर्ति हेतु संकल्प उसके पास है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह आतुर है। लेकिन संयत होकर अपने कदम बढ़ा रहा है और कुछ ही दूरी रह गयी है, पर लग रहा है कि संकल्प पूरा नहीं हो पायेगा। संकल्प परिवर्तन के योग्य भी नहीं है क्योंकि संकल्प तो जीवन की उन्नति के लिए जीवन के उत्थान के लिए किया जाता है।

संकल्प मात्र जीवन निर्वाह के लिए नहीं होता, वह तो जीवन के निर्माण के लिए होता है। लेकिन मुक्ति के स्थान पर बंधन नजर आने लगे। जीवन परतंत्रता में फंसता चला जाये तो वह संकल्प ठीक नहीं माना जायेगा। आनंद के स्थान पर चीत्कार सुनाई पड़े तो ठीक नहीं। यही बात हुई और उस पथिक ने कहा–रोकिये, रथ रोकिये। रथ रुक जाता है। वह यात्री नीचे उतर जाता है और कहता है कि ठहरिये आप लोग यहीं पर। मैं अकेला जा रहा हूं और वह अकेला ही आगे बढ़ जाता है।

कोई उसके पीछे जाने का साहस नहीं कर सका। अब क्या संकल्प उसके मन में आया है, यह तो वही आत्मा जानता है या तीन लोक के नाथ जानते हैं। इतना अवश्य सभी के समझ में आ रहा है कि रास्ता बदल गया है। यह वार्ता हवाओं में फैलती चली गई। सभी चकित है कि यह कैसे हुआ। हमने बहुत सोच-समझकर मुहूर्त निकाला था लेकिन यह अकस्मात् परिवर्तन कैसे हो गया। सब किकर्तव्यविमूढ़ हैं। आप समझ गये होंगे। विवाह का मंगल अवसर था और पशुओं का क्रन्दन सुनकर उन्हें बंधन में पड़ा देखकर नेमिनाथ कुमार ने पथ परिवर्तित कर दिया।

> **यदि दया है तो जीवन धर्ममय है, दयामय–धर्म या अहिंसा–धर्म एक वृक्ष की तरह है। शेष सभी सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य उसी के संवर्धन–संरक्षण और पोषण के लिए हैं।**

अब जीवन का लक्ष्य बंधनमुक्त होना है। जीवन आज तक बंधनमय रहा, अब बंधन का सहारा नहीं चाहिए। अब आजादी के स्वर कानों में प्रविष्ट हो रहे हैं। मूक पशुओं की आजादी के साथ अपनी कर्म-बंधन से आजादी की बात आ गई है। निमित्त मिल गया। निमित्त हमें भी मिलता है लेकिन हमारा पथ परिवर्तित नहीं होता और सारी बात सुनकर वहां एक दूसरी आत्मा भी उसका अनुसरण करती चली जाती है। वह रास्ता चला गया है गिरनार की ओर गिरनार पर्वत का नाम पहले उर्जयन्त था, बाद में गिरनार पड़ा। राजुल ने वहां गिर-गिरकर भी अपने संकल्प को नहीं छोड़ा। केवल स्वार्थसिद्धि के लिए पथ बदलने वाली यह आत्मा नहीं थी।

जो अहिंसा का उपासक है वह उसी पथ पर बढ़ता है जिस पथ में अहिंसा का पोषण होता है। गिरनार के झाड़-झंखाड़ में भी उसे मार्ग प्रशस्त अनुभव हुआ। अहिंसा के पथ का पथिक अपने पथ का निर्माण स्वयं करता चला जाता है। पथ का निर्माण तो चलने से ही होता है। महाव्रती ही अहिंसा के पथ पर चल सकता है। महाव्रती इसीलिए कहा जाता है कि वह अकेला ही महान पथ पर चल पड़ता है, फिर उसके पीछे बहुतों की संख्या चली आती है।

'अयंनिज: परोवेत्ति लघु चेतसाम् उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'–यह मेरा है, वह तेरा है, ऐसी मनोवृत्ति संकीर्णता का प्रतीक है। उदार आचरण वाले उदारमना तो सारी वसुन्धरा को ही अपना कुटुम्ब मानते हैं, अपना परिवार मानते हैं। ऐसे ही उदार चरित्र वाले मुक्ति के भाजन बनते हैं। जिस पथ के माध्यम से मेरा उद्धार हो और दूसरे का पथ भी प्रदर्शित हो, ऐसे पथ पर वे चलते हैं भले ही उस पथ पर कंटक बिछे हों। वह पथ मेरे लिए नहीं है जिसके द्वारा हिंसा का पोषण होता हो, जिसके द्वारा जीवों को धक्का लगता हो, जिसके द्वारा जीवन पतित बनता हो, जिसके द्वारा एक-दूसरे के बीच दीवार खड़ी हो जाती हो, स्वार्थ परायणता आती हो, वह पथ अहिंसा का पथ नहीं है। यही कारण था कि तोरणद्वार के पास पहुंचकर भी पथ बदल गया। कानों में वह दयनीय जीवों की आर्तध्वनि पड़ गयी। लाखों जनता ने भी सुनी लेकिन इस पथिक का पथ बदल गया। मूक प्राणियों की वेदना भरी आवाज वास्तव में यदि किसी ने सुनी तो वे नेमिकुमार थे और उनका अनुकरण करने वाली राजुल थीं। उन्होंने अपना ही नहीं दुनिया का पथ प्रदर्शित किया। यदि दया है तो जीवन धर्ममय है, दयामय धर्म या अहिंसा-धर्म एक वृक्ष की तरह है। शेष सभी सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य उसी के संवर्धन-संरक्षण और पोषण के लिए हैं।

जैन समाज में परिग्रह की बात आती है कि परिग्रह बहुत है। मात्र धन-संपदा का संग्रह करना परिग्रह नहीं है। परिग्रह का अर्थ तो मूर्छा है। मूर्छा का अर्थ है गाफिलता, वस्तुओं के प्रति अत्यंत अनासक्ति। दयाधर्म के विकास के लिए शांति और आनंद के विस्तार के लिए जो अपने वित्त (धन-सम्पदा) का समय-समय पर बूंद-बूंद कर संग्रह किया है, यदि उसे वितरण कर देता है तो वह परिग्रह एवं पाप का संग्रहकर्ता नहीं माना जाता। जैन समाज का इतिहास है, आज तक उसने देश पर विपत्ति आने पर राजा-महाराजों के लिए अपने भंडार खोल दिये हैं। संग्रहीत धन का वितरण करके सदुपयोग किया है। अपनी इसी संस्कृति का अनुकरण करते हुए आज भी अपरिग्रह वृत्ति को अपने जीवन में लाने का प्रयास करना चाहिए।

वीतराग, उज्ज्वल परिणाम और परोपकार की भावना ही जैन धर्म की शान है। 'धम्मो मंगल मुक्किटं अहिंसा संजमो तवो। देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो।' अहिंसा, तप और संयम ही मंगलमय धर्म है। जिसका मन सदा उस धर्माचरण में लगा है, उसे देव लोग भी नमस्कार करते हैं। यह जैनधर्म विश्वधर्म है। आदिनाथ भगवान के समय जो धर्म था वही तो जैनधर्म है और आदिनाथ भगवान ही आदिब्रह्मा हैं, जिनका उल्लेख वेदों में आता है और उनके पुत्र भरत के नाम से ही यह देश भारत देश माना जाता है। हमें भी उन्हीं का अनुकरण करते हुए जीवन में अहिंसा को धारण करना चाहिए। ■

शास्त्रों में वर्णित है कि पीपल की जड़ों में ब्रह्मा, तने में भगवान विष्णु व पत्तों में भगवान शिव का निवास होता है।

चिंतन

मनोजकुमार पोखरियाल

सुख, समृद्धि और वैभव देता है पीपल का पूजन

शास्त्रों में वैशाख मास में भगवान मधुसूदन की विधिवत अर्चना मोक्षकारी बताई गई है। इस पुण्यकारी मास में भगवान मधुसूदन की अर्चना के साथ ही पीपल वृक्ष के पूजन का प्रावधान भी स्कन्दपुराण में वर्णित है। वैज्ञानिक व आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोणों से पीपल को शुभ फलदायी माना गया है।

शास्त्रों में वर्णित है कि पीपल की जड़ों में ब्रह्मा, तने में भगवान विष्णु व पत्तों में भगवान शिव का निवास होता है। स्कन्दपुराण के अनुसार पीपल के वृक्ष को काटना ब्रह्म हत्या के समान पापकर्म है। यह सर्वविदित है कि पीपल भगवान मधुसूदन को बेहद प्रिय है। भगवान श्रीकृष्ण श्रीभगवद्गीता में अर्जुन से कहते हैं, 'अश्वत्थ सर्वा वृक्षाणां देवषीणां च नारद।' अर्थात् हे अर्जुन, मैं समस्त वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूं तथा देव ऋषियों में नारद मुनि हूं। वैशाख मास में पीपल को सांसारिक सुख, वैभव व मोक्ष प्राप्ति का सहज एवं सरल साधन के रूप में वर्णित किया गया है।

पद्मपुराण में एक स्थान पर स्वयं भगवान मधुसूदन का कथन है, 'जो पीपल वृक्ष की सेवा करके वस्त्र दान करता है, वह समस्त पापों से छूटकर अंत में विष्णु भक्त हो जाता है। कार्तिक महात्म्य में श्री सूतजी संतों से पीपल का माहात्म्य इस प्रकार वर्णित करते हैं, 'भगवान श्रीकृष्ण ने सत्यभामा से कहा कि व्रत करते हुए यदि साधक किसी संकट में पड़कर व्रत का पालन न कर पाए व विष्णुजी का मंदिर पास न हो तो उसे पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर मेरा जाप करना चाहिए, उस व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति होती है।' वायव्य संहिता में भी पीपल वृक्ष की महिमा का वर्णन करते हुए भगवान महादेव मां उमा से कहते हैं, 'पीपल वृक्ष के नीचे किये गये जप-पूजा का सहस्र गुना फल प्राप्त होता है।' यह भी माना जाता है

कि पीपल में अलक्ष्मी-दरिद्रा - जो कि देवी लक्ष्मी की बहन थी, का वास होता है। भगवान विष्णु व लक्ष्मीजी से प्राप्त वरदान के कारण शनिवार को जो भक्त अलक्ष्मीजी के निवास अर्थात् पीपल वृक्ष की आराधना करते हैं, उन्हें निश्चित ही शुभ फल की प्राप्ति होती है। इसी कारण शनेश्चरी अमावस्या व शनि प्रदोष होने पर पंचामृत से पीपल की अर्चना का प्रावधान शास्त्रों में वर्णित है। साधक को पीपल पूजन के पावन दिन पीपल की छाया में 'ऊँ नमः वासुदेवाय नमः' का जाप करते हुए धूप-दीप व नैवेद्य से विधिवत पूजा करने से साधक की मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है।

पीपल पूजन से न केवल साधक, बल्कि उसके पितरों का भी कल्याण संभव है। स्कंदपुराण में यहां तक कहा गया है कि जिस व्यक्ति के पुत्र न हो, वह पीपल को ही अपना पुत्र माने। ■

एक भी रिश्ता महफूज नहीं

जयंती दत्ता, मनोचिकित्सक

एक झटके में हर चीज की व्याख्या कर देने पर उतारू लोग हाई करियर ग्राफ वाले अपराधों की व्याख्या मंदी से जुड़े संकटों के रूप में कर रहे हैं। यानी इन लोगों को मनमाफिक नौकरी नहीं मिली या लगी-लगाई नौकरी चली गई या इनके लगाए पैसे कहीं डूब गए– इसलिए ये अपहरण या हत्या के रास्ते पर बढ़ गए। यह लंबे समय से चली आ रही एक ढर्रे की सोच है कि लोग आर्थिक मजबूरियों के चलते अपराध कर बैठते हैं। पहले ऐसा होता था कि आर्थिक या दूसरी समस्याओं के चलते लोग चोरी करते थे, डाका डालते थे। अभी समृद्ध लोग या आसानी से समृद्ध हो सकने वाले लोग ऐसा कर रहे हैं तो इसके पीछे उनकी कोई मजबूरी नहीं है। वे बेरोकटोक हिंसा और अपराध की पूरी मानसिकता अपने साथ लेकर बड़े हुए लोग हैं और भूले से भी यह बात उनके दिमाग में नहीं आती कि ऐसा करने पर लोग उन्हें क्या कहेंगे, या पैसे बटोरने की अपनी रौ में वे किसी की जान ले रहे हैं, किसी का परिवार तबाह कर रहे हैं।

हम एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जहां समुदाय की कोई भावना नहीं रह गई है, जहां कोई पूछता तक नहीं कि इतना पैसा जो आपके पास है, उसे आपने कैसे हासिल किया। आपके पास पैसा है, पॉवर है तो आप महान हैं, पूज्य हैं। जो घटनाएं सतह पर नजर आ रही हैं, असलियत में होने वाली घटनाओं का वे बहुत छोटा अंश भी नहीं है। आपराधिक मनोवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि समाज में एक भी रिश्ता महफूज नहीं रह गया है। कोई लड़का तेज गाड़ी दौड़ाते हुए टक्कर मार कर किसी की टांग तोड़ देता है तो ऐसी घटनाओं पर कोई खबर नहीं बनती, पुलिस-प्रशासन में शिकायत करने पर लड़के के अभिभावक उसे डांटने-डपटने के बजाय शिकायत करने वाले को ही देख लेने की धमकी देते हैं।

हमारे देश का मौजूदा युवा वर्ग बहुत बुद्धिमान है और उसका दिमाग पहले की तुलना में बहुत शार्प है, उसे बहकाने वाली चीजों पर सख्ती से अपना नियंत्रण कायम करे।

वृतांत

डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी

गतिशीलता का मर्म

लहर अत्यंत निराश और दु:खी बैठी थी। समुद्र उसे आगे बढ़ने और बिखरने के लिए दबाव बना रहा था। लहर डर रही थी। अपने आश्रयदाता के आंचल में छिपकर बैठे रहना ही उसे प्रिय था। वह मात्र इतने में ही संतुष्ट रहना चाहती थी।

समुद्र ने लहर को समझाया, भद्रे! आगे बढ़ो। मिलन का आनन्द जड़ता में नहीं, गति के साथ जुड़ा है। विद्रोह के बिना प्रणय की सरसता की अनुभूति कैसे होगी? जाड़ के अभाव में गरमी का स्वाद कैसे चखा जा सकेगा?

लहर बिल्कुल नहीं चाहती थी कि उसे आगे बढ़ने के झंझट में पड़ना पड़े। भविष्य में न जाने कैसा होगा? यह अनिश्चितता की कल्पना उसे भयभीत कर रही थी। उसने सतृष्ण नेत्रों से अपने प्रियत्तम की ओर देखा और चाहा कि उसे जहां का तहां रहने दिया जाए। अब समुद्र गाम्भीर्य हो गया, उसने कहा, ''देखती नहीं, मेरे भीतर कितना दर्द है, जो मुझे क्षण भर भी चैन से नहीं बैठने देता। उस दर्द में हिस्सा बंटाये बिना तुम कैसे मेरी प्रियतमा बन सकोगी? अन्तर को छूना चाहोगी तो दर्द भी तुम्हारे हिस्से में आएगा। ज्वारभाटा के रूप में उछलती मेरी पीड़ा में से क्या तुम लहराती हलचल जितना हिस्सा भी नहीं बंटा सकेगी? प्रेम के साथ क्या मेरा दर्द भी अंगीकार न करोगी।?''

लहर सुबक रही थी। अतीत की सरसता और आगत की अनिश्चितता के मध्य वह असमंजस-सी खड़ी थी- उस स्तब्धता को तोड़ती हुई आगे वाली लहरे हंस पड़ी और बोली-''सहेली! हमें देखो न उद्गम से बिछुड़ कर ही तो हम भी अनंत की ओर जा रही हैं। अपने प्रियतम की महानता के अंतर्गत ही तो क्रीड़ा कल्लोल कर रही हैं। हम उससे बिछुड़ी कहां हैं? सीमित से असीमित बनकर हमने प्रणय की सरसता को खोया कहां? बढ़ाया ही तो है। फिर तुम क्यों डरती हो?''

वार्ता अत्यंत मधुर और सरस थी। एतदर्थ उसे सुनकर सूर्य की किरणें भी ठिठक गईं। प्रौढ़ाओं के समर्थन में सिर हिलाते हुए उन्होंने भी कहा, ''हमें अपने प्रियतम की विशालता में विचरण करते हुए तब की अपेक्षा अब अधिक उल्लास है, जब हम निकटता की निष्क्रियता को जकड़े बैठी थीं''

अभी वार्ता प्रसंग पूरा नहीं हो पाया था कि महकती गंध भी वहां आ पहुंची और बोली, ''पुष्प की गरिमा के सुविस्तृत क्षेत्र को बढ़ाती हुई हम बिछुड़न का नहीं, पुलकन का अनुभव करती हैं, फिर छोटी सहेली! तुम्हीं क्यों कर रुक बैठने के लिए मचल रही हो?'

समुद्र इस बोध चर्चा को पूर्ण मनोयोगपूर्वक शांतचित्त से सुन रहा था। इतने में इन्द्र ने द्वार खटखटाया और कहा, ''चलने में विलम्ब न करो। प्यारी दुनिया तुम्हारी प्रतीक्षा में न जाने कब से बैठी है?''

समुद्र सकपकाकर उठ खड़ा हुआ। मेघ का वाहन तैयार था। भाप बनकर वरुण ने उस पर आसन जमाया और इन्द्र के संकेत पर सुदूर यात्रा पर चल पड़ा। नवोढ़ा ने सतृष्ण नेत्रों से देखा और पूछा, ''मेरे आश्रयदाता! क्या तुम्हें भी वियोग सहना पड़ता है? क्या बिछुड़न पीछा नहीं छोड़ती?

समुद्र की आंखें छलक आई। वह बोला, भद्रे! यह बिछुड़न नहीं नवीनीकरण है। जीवन इसी का नाम है। मैं मेघ बनकर आकाश में गमन करता हूं और सरिताओं की जलराशि बनकर फिर वापस लौट जाता हूं। इस गतिशीलता से किसी जीवित को छुटकारा नहीं। गमन का परित्याग करने पर मरण ही हाथ रह जाएगा। सड़ना मुझे कब सुहाता है-कल्याणी!''

अब लहर की आंख खुल गई थी। उसने गतिशीलता की सजीव सरसता का मर्म समझा और अनन्त यात्रा पर चल दी।

-86/323, देवनगर
कानपुर-208003 (उ.प्र.)

मोक्षदायिनी गंगा

मृदुला सिन्हा

गंगा और गंगाजल अपने प्राकृतिक रूप, रस और गंध के साथ ही मोक्षदायिनी है। गंगा अपने साथ जड़ी-बूटियां, खनिज पदार्थ और हिमाचल स्थित अनेक जीवन रक्षक औषधियां लेकर नीचे उतरती है। इसलिए उसका जल प्रदूषित नहीं होता। भारतीय वाङ्मय में गंगा मां है। जीवनदायिनी है। सूर्यवंश के राजा भगीरथ के तप के पश्चात ही सुरसरि गंगा सर्वप्रथम शिव की जटा और उसके उपरांत सात धाराओं में बंटकर पृथ्वी पर अवतरित हुई। राजा सगर के पुत्रों को प्राणदान दिया। तबसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी हर हिन्दू गंगा को मोक्षदायिनी मानता है। हर हिन्दू की इच्छा होती है कि प्राण पखेरू के उड़ते समय उसका शरीर गंगा किनारे हो, उसके मुख में गंगाजल और तुलसी तथा हाथ में गीता हो। गंगाजल, तुलसी और गीता तीनों अपने-अपने रूप-स्वरूप से मनुष्य को जीवन देती और इस भवसागर से पार कराती। इसलिए गंगा तो रहनी चाहिए। साहित्यकार विद्या निवास मिश्र का कथन है-''नदी के साथ संबंध भी जब इस रूप में होता है कि हम इसमें स्नान करते हुए कुछ नये हो जाते हैं, नदी हमारे भीतर आ जाती है, तभी हम नदी की पवित्रता का पूरी तरह ध्यान रख पाते हैं।'' गंगा, अम्मा के समान ही है। अपनी मां से मिलकर जैसी शांति मिलती है वैसी शांति, सुख और शीतलता गंगा में स्नान कर के भी मिलती है।

वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर जीवनदायिनी गंगा हमारी आस्थाओं में भी निरंतर प्रवाहित है। गंगा के प्रति हमारी सनातन आस्था उसके अंदर पांव रखने के पूर्व ही हृदय कंपा देती थी। उसे प्रणाम कर, क्षमावंत होकर ही उसके शरीर में प्रवेश करते थे। मलमूत्र त्यागना, गंदगी करना तो दूर की बात है। अब हम जरूरत से ज्यादा आधुनिक हो रहे हैं। मन में भाव आता है- पानी ही तो है। और हम सारी गंदगियां फेंक सकते हैं गंगा में। गंगाजल सिर्फ पानी नहीं है। जल ही जीवन है। मोक्षदायिनी गंगा को जीवंत और स्वच्छ रखना आवश्यक है।

विवेचन

नन्दकुमार सोमानी

आनन्द तो अपने ही अंदर है

संसार के किसी भी व्यक्ति या वस्तु में आनंद नहीं है, उसे अपने ही अंदर खोजना होगा। भारत के सनातन मूल्य इस देश के कंचन–कामिनी के व्यवहार के बाद आए हैं।

इस संसार में जितने भी प्राणी हैं, जन्म से मृत्यु तक जाने-अनजाने सुख-संतोष की खोज में लगे रहते हैं। एक चींटी उठते ही चीनी के दाने की तलाश में लग जाती है और मिलते ही उसे मुंह में दबाकर अपने बिल में जमा करने भागती है। जंगल के राजा शेर को आप सात सितारा होटल में बने चिकन बिरयानी की प्लेट भेंट में दे दें, लेकिन उसे तो किसी बकरे, गाय, भैंस आदि पर उछल कर दबोचने और उसे फाड़ कर खाने में ही मजा आता है। सारे जीवन वह इसी प्रकार अपने शिकार की खोज करता है, पर चींटी की तरह बटोरता नहीं।

उसी प्रकार हम लोग भी जीवन भर दो प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं : अधिक से अधिक बटोरने एवं उससे आनंद पाने की कोशिश में। सुख मन की प्रवृत्ति है, शरीर की नहीं, अत: नींद में हम भले सुख-स्वप्न में डूबते-उतराते रहें, सुबह नींद खुलते ही फिर जीवन की उसी चक्की को पिसने लगते हैं। चाहे भिखारी हो या सेठ, ये दो प्रवृत्तियां जिंदगी भर हमें दौड़ते रहने को मजबूर करती रहती हैं। जब कमाने वाले स्त्री-पुरुष देर शाम को घर लौटते हैं तो उन्हें न पड़ोस की सुध रहती है, न ही अपने ही परिवार में दो घड़ी बैठकर सुख-दुख की बात करने की। पांच लाख की वार्षिक आमदनी वाला व्यक्ति घर आकर मुश्किल से खाना खाता है और धम्म से बिस्तर में पड़ जाता है। 50 करोड़ अथवा 500 करोड़ की आमदनी वाला भी इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करता है। धन बटोरते रहना व उपभोग करते रहना। एक सीमा के बाद उपभोग का भी यथोचित समय उन्हें नहीं मिलता। छुट्टी के दिन भी वे टेलीफोन, फाइलों, ई-मेल व इंटरनेट में लगते रहते हैं।

घर में पहली बार सेकेंड हैंड मारुति कार आई तो परिवार में कितना उल्लास छा जाता है। बच्चे-बूढ़े सभी बैठकर इंडिया गेट या चौपाटी की सैर के लिए निकलते हैं। गाड़ी के दरवाजे आहिस्ता से बंद किए जाते हैं, ताकि उसकी बॉडी में कहीं नुकसान न हो। कोई दूसरा लेटेस्ट मर्सीडीज या बीएमडब्ल्यू खरीद कर वही सुख पाना चाहता है। लेकिन वह मोहाकर्षण दो-चार महीने ही रहता है, बाद में वह वस्तु सामान्य हो जाती है और कोई नया सुख नहीं दे पाती।

यदि गाड़ियों में सुख होता तो मर्सीडीज का मालिक कुछ ही महीनों में उससे ऊब नहीं जाता। पर मन को तो नित नई नवेली चीज चाहिए, अत: गाड़ी बनाने वाले हर साल नए-नए मॉडलों को गाजे-बाजे के साथ शो रूम में लाते हैं।

सिगरेट व शराब को लें। यदि इनमें सुख होता तो सभी को मिलता। पर एक आदमी सिगरेट के कश लगाकर बाहर फेंकता है, आप उससे बचने के लिए गर्दन मोड़ लेते हैं। कुछ शराब में सुख व मस्ती पाते हैं और अन्य लोग उससे नफरत करते हैं। तो गाड़ी, शराब व सिगरेट में आनंद नहीं है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में संसार के विषय पदार्थों को कंचन व कामिनी की संज्ञा दी गई है। कंचन अर्थात धन व कामिनी अर्थात स्त्री या अन्य कोई मनभावन वस्तु, चाहे वह लेटेस्ट आई पॉड ही क्यों न हो।

एलिजाबेथ टेलर कुछ वर्षों पूर्व विश्व की अनन्य सुंदरियों में मानी जाती थी। हॉलीवुड में उसकी फिल्म का सदा आकर्षण बना रहता और यदि वह रिचर्ड बर्टन के साथ होती तो सोने में सुहागा। एलिजाबेथ ने सात-आठ शादियां कीं, किसी में भी सुख-संतोष नहीं मिला। रिचर्ड बर्टन से तो दो बार विवाह और तलाक हुआ। यदि एलिजाबेथ में इन पुरुषों ने कोई सुख नहीं पाया तो कामिनी में कहां से होगा?

संसार के किसी भी व्यक्ति या वस्तु में आनंद नहीं है, उसे अपने ही अंदर खोजना होगा। भारत के सनातन मूल्य इस देश के कंचन-कामिनी के व्यवहार के बाद आए हैं। सुख ईमानदारी की कमाई में है, गृहस्थी की सीमाओं में रह कर संतोष करने में है और... और... पाने की तृष्णा और संग्रह में नहीं है। ■

चार मोमबत्तियां

पहली मोमबत्ती 'शांति'–मैं जल्दी बुझ जाऊंगी। बुझ गई।

दूसरी मोमबत्ती 'विश्वास'–मेरा अस्तित्व नहीं है। बुझ गई।

तीसरी मोमबत्ती 'प्रेम'–मेरा महत्व नहीं। लोग प्रेम करना भूल गए हैं। बुझ गई।

एक बालक कमरे में प्रवेश करता है। तीनों मोमबत्तियों को बुझा देखकर निराश होकर रोने लगता है।

चौथी मोमबत्ती 'आशा'–मैं आशा हूं मैं स्वयं भी जलती रहूंगी। तीनों को पुन: प्रकाशवान कर दूंगी।

चौथी मोमबत्ती–शेष तीन को पुन: प्रकाशमान कर देती है।

सबक–'आशा' की लौ सदैव जलती रहनी चाहिए। आशा हो तो, शांति, विश्वास, प्रेम स्वत: ही प्राप्त होते रहेंगे।

–दिलीप भाटिया

Attitude helps to UPLIFT OUR LIVES

Gani Rajendra Vijay

Whenever we get angry we become weak. We must adopt forgiveness if we want to expand our capability and tolerance. It is believed that if we surrender before others, we are weak. If we agree to what others say and don't oppose them or react at all, we are deemed idiots. But, this is not the reality. Peaceful thinking increases our capabilities. Anger and agitation do not elevate our life but degrade it. We know the truth but don't accept it whole-heartedly. We don't often witness the real truth being honoured in the world, but we do see the truthful suffer in life. That's why we deviate from the path of truthfulness. But, this is an incomplete thought. Dwell upon it – Does truth require any rewards? If we have made our life truthful, what more respect or honour do we need? In spite of discipline and self-control, desires dominate and overpower us all the time and deviate us from the right path. When desires engulf us, we lose control on ourselves. We should fulfill only those desires which help us grow, without hindering the interests of others. When we start dropping our desires, we feel enriched. 'Nobody is alien and in this world nothing belongs to me'– such attitude separates us from the rest and makes us special. When we carry bitterness for others in our mind, how can we expect the love and warmth from them in return. An enemy is a person who nurtures enmity inside him. Apparently speaking, nobody is a friend or foe in this world. If we have good feelings for other people in general then they become our friends and if we nurture bitterness for others, they may not turn into our enemies but we definitely become our own enemy. Where there is possessiveness, there are problems. We consider our mistakes unintentional and unavoidable but never forgive others for their mistakes. This attitude prevents us from having a balanced mind. Children quarrel and patch up soon after; and they are as innocent as they were before. A man abused Lord Buddha for half an hour but the Lord did not utter a word. Kamath troubled Parshvanath for many days but he did not retaliate. Such is the forgiveness of the saints! If someone harbours ill-will against us, he will be silenced by our demeanour. Our calmness will wipe away his bitterness. All sadhus and sadhvis accept the virtue of forgiveness in 'Pratikraman'. They don't go to everyone asking for forgiveness but have forgiveness in their heart for everyone. A similar attitude can be developed by us. There is a story– There were two friends, who were very affectionate to each other. One of them ran away from home and the other went to study in another city. The latter completed his studies and later came to know that his friend had become a dacoit. He felt sad. One day he went to the forest, where he saw a horse rider. He immediately recognized his old friend who had now turned into a dacoit. The rider too recognized him but merely asked him to step aside. Having recognized his dacoit friend he said–"Brother, I want to speak to you". The rider replied, "Step aside, If you talk, I will mutilate your tongue." With this he swiftly moved away. After the dacoit rider was gone, he realized, "What if he had mutilated my tongue. He would have been reformed. I have made a mistake. When I meet him the next time I will tell him to kill me since I cannot see him in this sorry state." They met again in the same forest. He said–"You were telling me that you will slit my tongue if I say something. All right then, take away my life but I must say what I want to. It pains and hurts me to see you as a dacoit." This time the dacoit rider did not speak. He got down from the horse, bent his head and walked away. A little change was visible. His friend reflected, "Perhaps, there are still some faults in me because of which he is ignoring what I say and spoiling his life." In the third meeting, he did not say a word, just embraced his dacoit friend and burst into tears, voicing his pain and suffering on seeing him as a dacoit. The dacoit touched his friend's feet and said, "It's all over now. Today, I have realized that my bad actions can give pain and suffering to others, including you. Now, I will no longer be able to indulge in any crime." We should first reform ourselves instead of others. If we nurture good intentions for others, they will be forced to think twice before committing crimes. Hence, we should make an effort to see that our mind is calm and peaceful. ■

The flower and its fragrance

Sri Chinmoy

The most beautiful thing on earth is our gratitude to divinity. Children always see more beauty than grown-ups do; because of their tremendous inner purity they see beauty in everything. Therefore we have to appreciate and admire them because they are still in the world of the soul. When the mind is "developed", it also goes through conditioning and so begins to find fault. We love to see ugliness and impurity even in things that are really beautiful and good If an artist has created something, we look for anomalies.

The child, however, regards everything as his very own, so he sees beauty in everyone and in everything. He feels that there is nothing in comparison with other things. In the inner world everything is beautiful. Divine love and divine beauty are inseparable. Love is the flower, beauty is the fragrance. They go together. A flower is an object, God's creation. But the flower has to offer its quality, that is, its fragrance. Only when you come near a flower will you see and appreciate its beauty. But even when you are far away, its fragrance can permeate the air.

If a flower does not have any fragrance, half its divinity is gone. Beauty comes forth from the flower which is love. Flower and fragrance are inseparably one. When earth's cry and heaven's smile meet, beauty's perfection dawns. Joy is a bird that we all want to catch. It is the same bird that we all love to see flying. What is the difference between pleasure and joy? Pleasure is followed by frustration, whereas joy is always followed by peace and more joy. There are two kinds of joy, outer joy and inner joy - there's a subtle difference between them.

We feel that the possessor of outer joy is somebody else, not ourselves. Very often we want to snatch this joy from others. Inner joy is not like this. When we meditate or contemplate, at that time we feel that we are the soul of joy. This joy that we possess inside is like a fountain; it comes spontaneously. Inner joy has no fear It can, if it wants, transform our human nature in the twinkling of an eye. If we can experience true inner joy even for a second we will feel that the world is totally different.

Now, we feel that we will have to change our attitude towards certain aspects of the creation if we want to have joy, because the world is constantly fighting and doing all undivine things. But if we can look at the world with our inner joy, we will see that the world has already changed? How can we get this inner joy? If we really feel that inner joy is the breath of our life, if we feel that we cannot exist without joy and we will die at this very moment if we do not have it, then God showers his choicest blessing, which is joy, upon us. ■

Change Your Direction To Change Your Life

Acharya Mahaprajna

Everything depends upon our inclination, whether it is towards a peaceful and blissful life or whether it is towards a life full of problems and distress. When we try to find the solution, then the direction of life can change, and if we complicate the problem, then the complexities of life go on enhancing infinitely.

There is no question of escaping from life. Where can one go after escaping? In any case, one cannot go beyond this world. It is immaterial whether you live in this form of life or other forms of life, in India or abroad, for some where, you have to seek shelter and settle down.

Change of direction does not mean escaping from life. It only means reforming one's attitude. We are inclined to hold onto the reflection instead of reality. Our inclination and all our activities are generally centered around reflection, not around reality. Our body, matter and all impermanent objects are the reflection of our non-dual existence, which is the truth. Whatever is viewed in a mirror, is reflection, not reality. Treating the reflection or shadow as real is the root cause of distress and agonies of life.

I was sitting in a room which had a mirror. A bird came in. It sat before the mirror and started pecking at its image in the mirror. It was distressed and anxious. In fact, it was hitting upon the image of the other bird in order to harm that bird. It was using its full strength. Unfortunately, it was not able to understand that it was hitting its own reflection in the mirror. The bird was in illusion; it was overcome by maya, and in this process, it injured its own beak.

Like the bird that attacked its own reflection – not knowing it was a mere reflection of itself – every man is sitting in front of the mirror. He is viewing his reflection and fighting with it. This has been happening since time immemorial. He has not understood the opponent with whom he is fighting.

Therefore, Mahavira said, "A percipient will use matter in a different way. A non-percipient uses the matter with attachment and a percipient uses the matter without being attached to it. A percipient lives a real life but a non-percipient lives the life of illusion".

Once when the Moon had risen high in the dark sky, a man observed his shadow fall ahead of him and thought it was someone moving ahead of him, for each time he moved, it moved, too. He became frightened. He was not aware that it was only a shadow of his own body.

Mahavira further said, "A person who has practiced wakefulness and learnt the art of perceiving matter is different from a non-percipient. A percipient will indulge in eating, drinking, wearing, covering, walking, sitting, but he will perform all these activities irrespective of his likes and dislikes". A non-percipient follows his likes and dislikes, so he will prefer what he likes and reject what he dislikes. A percipient uses a thing in the perspective of its utility and necessity. He will avail each and everything on the basis of its utility and requirement only, disregarding his likes and dislikes. The conduct and behaviour of a percipient and a non-percipient is entirely different.

Change of direction means reformation of conduct and behaviour. As long as one's behaviour and conduct remain unchanged, the change of direction in life does not take place. Therefore the change of direction means change of behaviour, and change of behaviour means change of direction. ■

The ways of karma

Sri Sri Ravi Shankar

Every object in this universe is endowed with four characteristics -- dharma, karma, prema and gyana. Of these, karma is the most talked about and the most misunderstood. The Bhagavad Gita says 'Gahna Karmanyo Gathi' which means: unfathomable are the ways of karma and yet it seems to be the only logic to explain this whole creation, its existence and the cycle of life and death. Karma is beyond all logic and reasoning. The more you understand it, the more amazed you are. It causes people to be together or separate.

It causes some to be weak and some to be strong. It makes some rich and others poor. The literal meaning of karma is 'action'. There are three types of karma -- prarabha, sanchita and agami. The first is the latent karma which is karma as an impression or seed of action. The second is karma as an action, and the third is karma as a result. Prarabha means 'begun'; the action that is already manifesting and that is yielding its effect right now. You cannot avoid it or change it, as it is already happening.

Sanchita is the gathered up or piled up karma. It is latent or manifested in the form of a tendency or impression in the mind. Sanchita karma can be burned off by spiritual practices before it manifests. Agami karma is the future karma of the action; that which has not yet come and which will take effect in the future. If you commit a crime, you may not get caught today, but will live with the possibility that, one day you may get caught. Karma is also always bound by time, because every action has a limited reaction.

If you do something good to people they will come to thank you and be grateful to you as long as they are experiencing the effect of your action. It is often asked, "Why do good people suffer?" No good action will yield a bad result and no bad action will bring a good result. This is the law of karma. As you sow, so shall you reap Karma is that which propels reincarnation. Why are some people born in a very violent environment and others in comfortable environment? The stronger the impression, the greater the possibility of the next life being according to that.

So, often you reincarnate like the person you hate or love. The mind which is full of different impressions leaves this body but the impressions wait for a proper situation to come back. So it is the last thought that is very important. Whatever you do throughout your life, in the last moment your mind should be free and happy. Getting rid of karma means getting rid of impressions. Some karma can be changed and some cannot be. As human beings we have we have the ability to erase fear through meditation.

If you meditate, become hollow and empty, whatever the fear is will just dissolve and disappear. Our perception of suffering, of good and bad, is always relative. God is absolute reality; witness of all. See God as movie director, rather than as a judge. He has no ill feeling for the villain and no special favour for the hero. Each one is playing his/ her role Live with the karma and not be attached to it. Awareness, alertness, knowledge and meditation will help erase past impressions. It has the strength to dissolve and destroy any karma and bring freedom to you. ■

स्वास्थ्य

सुरेन्द्र अंचल

नीम और मधुमेह

नीम के पत्तों से, तेल से या सीकों के रस से शरीर को किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं रहती।

महर्षि सुश्रुति ने सुरामेह के लिए नीम के कषाय को पीने का परामर्श दिया है। मधुमेह रोग के निवारण हेतु नीम एक प्रशांत औषधि है।

सुरमोहिनं निम्बकषायम।

वैज्ञानिकों ने नीम के पत्तों से तथा उसके बीजों (निम्बोरियों) से 'निम्बडीन' नामक तत्व खोज निकाला है। यह तत्व रक्त-शर्करा को तेजी से नियंत्रित करता है। यह एड्रोनेकलीन के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले हाईबर ग्लाइसीमिया को भी रोकता है।

मधुमेह में नीम के सूखे पत्तों का चूर्ण और त्रिकूट चूर्ण दोनों समभाग में लेंवे। एक चम्मच प्रात: और एक चम्मच सायंकाल लें। पानी व दूध के साथ सेवन करने से मधुमेह दो माह में पूर्णतया नियंत्रित हो जाता है।

मधुमेह के रोगी के लिए नीम का तेल 30-30 बूंदों की मात्रा, दोनों समय पिलावें। इसकी मात्रा का क्रम इस प्रकार रखा जाना चाहिए।

दो दिनों तक 30-30 बूंदों की मात्रा प्रात: एवं सायं दोनों समय दें।

इसके बाद मात्रा बढ़ा कर 35 बूंदे कर अगले दो दिनों तक दें।

पांचवें व छठें दिन 40-40 बूंदे दोनों समय दी जावें। इससे अधिक मात्रा नहीं बढ़ावें किन्तु 40 बूंदों वाला क्रम कम से कम पन्द्रह दिनों तक देते रहें। आवश्यकता समझे तो किसी अधिकृत वैद्य से परामर्श से मात्रा कम ज्यादा करें।

तेल कड़वा होता है व पीने में रोगी को कठिनाई हो, तो कैप्सूलों से भरकर सेवन कराया जा सकता है। यह नुस्खा वैद्य श्री रामेश्वर दत्त शास्त्री द्वारा अनुभूत है। फिर भी किसी अधिकृत वैद्य से परामर्श लेना उचित है। मधुमेह के विभिन्न स्तरों व स्थितियों के अनुसार मात्रा में भी अंतर करना होता है। अत: वैद्य का परामर्श आवश्यक होता है।

नीम के पत्ते, ताजा गूलर व बिल्व पत्रों को पीसकर पानी से छान कर एक कप दोनों समय वैद्य द्वारा बताए दिनों तक रोगी को देते रहे।

नीम की सींके 20 ग्राम, कालीमिर्च 5 नग दोनों को पीसकर उबालें। कण्डदान कर पानी पी लें, ऊपर से दूध पी लेवें। यह क्रम दो माह तक निरंतर अथवा रोग और रोगी की स्थिति के अनुसार देते रहें। यों नीम के पत्तों से, तेल से या सीकों के रस से शरीर को किसी प्रकार की हानि की संभावना नहीं रहती। प्रत्युत अन्य रोगों का नाश भी अवश्यंभावी है। यों अनेक दवा निर्माताओं द्वारा नीम से इस प्रकार की बनी बनाई औषधियां बाजार में उपलब्ध है। यथा-

मधुरिम कैप्सूल- यह 'शिल्पा केम इन्दौर' द्वारा निर्मित उत्तम औषधि है।
मद्यारि चूर्ण- नीम के सूखे पत्तों का चूर्ण दो ग्राम, गुडमार चूर्ण दो ग्राम, मामझक चूर्ण चार ग्राम, अरण्यमीरक दो ग्राम, सप्तरंगी चूर्ण चार ग्राम। इन सभी को मिलाने पर मद्यारि चूर्ण तैयार हो जाता है। अनेक दवा निर्माता कंपनियां द्वारा बना बनाया चूर्ण भी उपलब्ध हो जाता है। वैद्य के परामर्शानुसार सेवन करें।
दिव्य मधुमाशी बटी- यह दिव्य फार्मेसी कनखल हरिद्वार द्वारा निर्मित है।
दिव्य मधुकल्प बटी- यह भी दिव्य फार्मेसी कनखल द्वारा निर्मित है। इस प्रकार अनेक निर्माताओं द्वारा अनेक उपयोगी दवाइयां बाजार में उपलब्ध है।

पंचतिक्त स्कन्ध में नीम भी एक घटक है। आचार्य चरक के अनुसार जिन वृक्षों का रस तिक्त या कसाय है और जो विपाक में कटु है, वे वृक्ष तिक्तों में गिने जाते हैं। ऐसे पांच वृक्ष निम्न है। 1. परोल, 2. नीम, 3. चिरायता, 4. शस्मा और सप्तपर्ण।

-साकेत नगर, ब्यावर, अजमेर (राजस्थान)

आत्मबल से आत्मनियंत्रण

मृदुला गर्ग

चार जन्मजात प्रवृत्तियां हैं- आहार, निद्रा, भय और मैथुन। हर किसी के शरीर में छोटा या बड़ा पेट है। सबको भूख लगती है। पेट के लिए ही इस चराचर संसार में जीवमात्र विचरण करते हैं। मनुष्य अन्य प्राणियों से अधिक बुद्धि रखता है, इसलिए उसने भविष्य के लिए संग्रह करना भी सीख लिया। उसने अपना पेट और आवश्यकताएं भी बढ़ा लीं। अन्य जीव संग्रह नहीं करते। वे पेट भरने के लिए उद्यम अवश्य करते हैं। उसी प्रकार निद्रा भी है। सब सोते हैं। नींद से जगकर फिर तरोताजा होते हैं। सभी जीवों में तीसरी प्रवृत्ति भय है। सभी में सुरक्षा का भाव होता है। मनुष्य को अंधकार और अकेलेपन से भी भय लगता है। कई लोग तो भीड़ में भी भय खाते हैं। चौथी प्राकृतिक आवश्यकता मैथुन है। सृजन के लिए दो प्राणियों (मादा और नर) का मिलना उसी प्रकार आवश्यक है जैसे द्विदल वाले अन्न (दलहन) के दोनों दल एक आवरण के भीतर छुपे रहकर ही अंकुरित होते हैं। यदि मूंग, चना जैसे अन्न के दोनों दल अलग-अलग कर दिए जाएं तो वे अंकुरित नहीं होंगे। और वे एक ही बार अंकुरित होते हैं।

प्रकृति ने मनुष्य से इतर जीवों में आत्मनियंत्रण के लिए गुंजाइश नहीं छोड़ी। उन्हें इसकी जरूरत भी नहीं। एक निश्चित समय पर उन्हें भूख लगती है, नींद आती है, निश्चित परिस्थितियों में ही वे भय खाते हैं। हर जीवन में मैथुन संगम के लिए विशेष मौसम निर्धारित है। निश्चित जलवायु और मौसम में ही निश्चित फसल, फल और सब्जियां लगती हैं। वे सिर्फ संतान पैदा करने के लिए ही मिलते हैं। मनुष्य ही अकेला है जिसकी चारों प्रवृत्तियां बढ़ती जाती हैं। उसकी भूख, नींद, भय और मैथुन पर प्रकृति नियंत्रण नहीं रखती, पर वह इन पर नियंत्रण का सामर्थ्य रखता है। इसे ही आत्मनियंत्रण कहते हैं। कितना खाएं, कितना सोएं, किससे भयभीत हों और मैथुन भाव का कितना इस्तेमाल करें, मनुष्य अपने आत्मबल से नियंत्रित कर सकता है।

समृद्ध सुखी परिवार

सुखी और समृद्ध परिवार का मुखपत्र

विज्ञापन और सदस्य बनाने हेतु प्रतिनिधि संपर्क करें

पत्रिका के स्वयं ग्राहक बनें, परिचितों, मित्रों को ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें

वार्षिक शुल्क
300 रुपये
दस वर्ष
2100 रुपये
आजीवन
3100 रुपये

विज्ञापन देकर अपने प्रतिष्ठान को जन–जन तक पहुंचाएं

कृपया निम्नलिखित विवरण के अनुसार मुझे 'समृद्ध सुखी परिवार' सदस्यता सूची में शामिल करें:

नाम.....

पता.....

.....

फोन..... ई–मेल.....

सदस्यता अवधि.....राशि रुपए..... द्वारा मनीऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट संख्या.....

दिनांक..... .....

आवेदक के हस्ताक्षर

नोट: सदस्यता शुल्क की राशि का चेक/ड्राफ्ट **सुखी परिवार फाउंडेशन, नई दिल्ली** के नाम से बनाएं या एक्सिस बैंक खाता संख्या 119010100184519 में सीधा जमा करवाएं। मनी ट्रान्सफर के लिए **IFS CODE UTIB0000119** का प्रयोग करें।

सुखी परिवार फाउंडेशन

टीएसडब्ल्यू सेंटर, ए–41/ए, रोड नंबर–1, महिपालपुर चौक, नई दिल्ली–110 037

फोन: +91–11–26782036, 26782037, मोबाइल: 09811051133

न्यायपालिका का संयमित व्यवहार जरूरी

मुरली कांठेड़

भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एस.एच. कपाड़िया अपनी असाधारण कर्तव्यपरायणता, संविधान के प्रति समर्पण एवं ईमानदारी के बलबूते इतने उच्च ओहदे पर पहुंचे हैं।

अपने एक भाषण में उन्होंने न्यायिक व्यवस्था की लक्ष्मण रेखा तय करते हुए कहा कि न्यायपालिका का दायित्व कानून की व्याख्या करना है। व्यक्तिगत आस्थाओं अथवा प्राथमिकताओं के आधार पर समाज व राष्ट्र की दिशा तय करना कतई नहीं। वे ज्यूडिशियल एक्टीविज्म को सही नहीं मानते। उनका मत है कि पूर्वाग्रह सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी एवं भ्रष्टाचार की वजह से न्यायधीशों के निर्णयों की विश्वसनीयता समाप्त होने का खतरा बना रहता है।

पिछले कुछ समय से न्यायपालिका से समाज की अपेक्षाएं बढ़ती ही जा रही है। जनता का राजनेताओं, सांसदों, विधायकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों से मोह भंग हो चुका है। संविधान के निर्माण के समय ही डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट कर दिया था कि न्यायपालिका यानि अदालतें कानून की व्याख्या के साथ मामूली हेर-फेर तो कर सकती हैं, पर उसे प्रतिस्थापित नहीं कर सकती। वे पूर्व में की गई टिप्पणियां, व्याख्याओं को नया रूप दे सकती है। वर्तमान शक्तियों का अधिकार क्षेत्र बढ़ा सकती है। शक्तियों एवं अधिकारों का हस्तातंरण नहीं कर सकती।

सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निष्ठा एवं नियमपूर्वक संवैधानिक उपायों का ही सहारा लेना चाहिए, डॉ. अम्बेडकर, पं. जवाहरलाल नेहरू का स्पष्ट मत यही रहा था।

यहां अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी की चर्चा करना प्रासंगिक होगा क्योंकि उन्होंने अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से राष्ट्र में चरित्र निर्माण एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण योगदान दिया। अणुव्रत का दर्शन इस बात पर आधारित है कि व्यक्ति नैतिक तरीके से अपने कर्तव्य का पालन करे, तथा संघ, समाज, राष्ट्र की समस्याओं के समाधान हेतु सबके साथ मिलकर कार्य करें। महात्मा गांधी का भी यही सपना था कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन को पूर्णता के साथ जिए। अपनी इच्छाओं को सीमित कर सामाजिक कर्तव्य का निर्वहन करें।

इन सब बातों पर गौर करने से यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका की लक्ष्मण रेखा भी स्वीकार की जानी चाहिए। विधायिका नियम-कानून बना देती है पर न्यायपालिका उसे जीवन प्रदान करती है। नियम व कानून को संरक्षण न्यायपालिका से प्राप्त होता है। कानून की अंधोरी गलियों में वह रोशनी का कार्य करती है।

आज न्यायपालिका के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती उसकी विश्वसनीयता एवं पारदर्शिता की है। लोकतंत्र का भविष्य न्याय के मंदिर पर ही निर्भर है। अन्ना हजारे का अभियान भी लोकपाल बिल बन जाने के बाद अदालतों के व्यवहार पर ही निर्भर करेगा। वर्तमान समय में न्यायपालिका का व्यवहार संयमित होने के साथ-साथ उत्तरदायित्वपूर्ण रहे, यह नितान्त अपेक्षा है।

पुस्तक समीक्षा

पद्मावती साधना और सिद्धि

ललित गर्ग

सामान्यतया किसी भी लक्ष्य या उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनोयोग से एवं निष्ठापूर्वक जो प्रयत्न किये जाते हैं, उन्हें साधना कहते हैं किन्तु मंत्रशास्त्र की दृष्टि से किसी पुरुषार्थ विशेष या परम पुरुषार्थ की सिद्धि हेतु देवी कृपा अर्जित करने के लिए मनोयोग से एवं निष्ठापूर्वक जो क्रियाएं की जाती हैं, वे साधना कहलाती हैं। इसलिए साधना वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा साधक देवी कृपा प्राप्त कर इष्ट-सिद्धि एवं अनिष्टों का परिहार करता है।

शाक्त संप्रदाय में जो स्थान गौरी अर्थात् दुर्गा का है, बौद्ध संप्रदाय में जो स्थान तारा का है, कौलिकी (कपालिकों) में जो स्थान व्रज का है, वही स्थान जैनों में पद्मावती देवी का है। इनकी महादेवी के रूप में स्तुति की गई है। जिस प्रकार 'शिव और शक्ति' की पूजा आराधना तंत्रागमों में स्पष्ट है वैसी ही 'धरणेन्द्र और पद्मावती' की युगल उपासना जैनधर्म में प्रचलित है।

अधिकारी विद्वान आचार्य अशोक सहजानन्द के शब्दों में - ''महालक्ष्मी का दूसरा नाम 'पद्मावती' है। वैष्णव संप्रदाय में 'श्री सूक्त' और 'लक्ष्मी सूक्त' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें श्री विष्णु पत्नी के विविध रूपों एवं नामों का रहस्यपूर्ण वर्णन है। वैष्णवजन श्री सूक्त में वर्णित 'परमेस्थिता', 'पदमवर्णा', 'पदमनिनीय', 'पद्ममालिनी' तथा इसी प्रकार लक्ष्मी सूक्त में वर्णित 'पद्मानने', 'पदम्डरू', 'पद्माक्षि', पद्मसंभवे', 'परम-विपदमत्रै', 'पद्मप्रिये', 'पद्मदलापताक्षि' आदि संबोधनपरक नामों की भगवती पद्मावती के अन्य स्वरूप मानकर पूर्णश्रद्धा के साथ आराधाना करते हैं। इसी प्रकार के पद्मावती के अन्य नाना पर्याय नामों की सूचना लक्ष्मी सहस्त्रनाम में है जो उनके नामरूप की अनंतता का परिचायक है।

वरिष्ठ संत ध्यानयोगी पं. हेमचन्द्र जी महाराज के आशीर्वचन से मंडित यह कृति है। उनके अनुसार - 'आज के भौतिक युग में लौकिक कार्यों की सिद्धि के लिए शासन देवी पद्मावती की उपासना बड़ी प्रभावक है। 'श्री पद्मावती साधना और सिद्धि' पुस्तक में कुशल संपादक और सिद्धहस्त लेखक अशोक सहजानन्द ने सभी दुर्लभ सामग्री को सुसंपादित कर संकलित किया है जिससे यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी बन गई है। इनकी अनेकों पुस्तक मैंने पढ़ी है और सभी में प्रामाणिकता है।'

वस्तुत: जैन ही नहीं जैनेतर साधक भी विशेष रूप से अर्थ-सिद्धि के लिए पद्मावती की साधना को विशेष महत्व देते हैं। देवी पद्मावती के चमत्कारिक पीठ - 'हुम्मज' का विशेष परिचय दिया गया है। साथ ही मातेश्वरी के साधना - विधान को विस्तार से समझाया गया है। सचमुच इस ग्रंथ के माध्यम से सहजानन्द जी ने साधक-समाज को एक विशेष उपहार प्रदान किया है।

पुस्तक:	*श्री पद्मावती साधना और सिद्धि*
लेखक:	*आचार्य अशोक सहजानन्द*
प्रकाशक:	*मेघ प्रकाशन 239, गली कुंजस, दरीबाकलां, चांदनी चौक, दिल्ली-110006*
मूल्य:	*200 रु. + डाकखर्च 25 रु.*

विवेक

पं. वागाराम परिहार

ईष्टकृपा से पाएं सुख-शांति एवं समृद्धि

भारतीय संस्कृति में पूजा पाठ का विशेष महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो आस्तिक हो या नास्तिक, परेशानियां के समय तो किसी देव की स्तुति प्रारंभ कर ही देता हैं, लेकिन फल कुछ ही लोगों को प्राप्त होता है। कई बार यह देखने में आता है कि व्यक्ति प्रतिदिन 2-3 घंटे पूजा करता है। फिर भी उसे वह मान-सम्मान नहीं मिल पाता जो 10-15 मिनट पूजा करने वाले किसी व्यक्ति को सहज ही प्राप्त हो जाता है। इसका कारण व्यक्ति द्वारा ईष्टदेव का निर्णय सोच समझ कर नहीं किया गया है। प्रकृति भी कई बार संकेतों द्वारा किसी ईष्टदेव की पूजा करने हेतु जागृत करती है। फिर भी ऐसा अवसर हर किसी को प्राप्त नहीं होता। यदि प्राप्त हो भी जाता है तो भूल हो जाती है। अत: अपने ईष्ट निर्णय हेतु हम आपको उपयुक्त मार्गदर्शन दे रहे हैं जिससे आपको ईष्ट निर्णय एवं उनकी उपासना में कोई गलती न हो एवं आपको सुख शांति भी प्राप्त हो सके।

जन्म कुण्डली में लग्न एवं लग्नेश पर जिस ग्रह का सर्वाधिक प्रभाव है उसी से व्यक्ति का तत्व निर्धारित होता है। हमारा शरीर पंचमहाभूतों के विचित्र संयोजन द्वारा निर्मित हैं। व्यक्ति पृथ्वी तत्व से प्रभावित हो तो शिव की, अग्नितत्व से प्रभावित हो तो दुर्गा या शक्ति की, वायु तत्व से प्रभावित होने पर विष्णु की, जल तत्व से प्रभावित होने पर गणेशजी की एवं आकाश तत्व से प्रभावित होने पर विष्णु आराधना लाभदायक रहती हैं।

पंचम भाव में सूर्य स्थित होने पर सूर्य आराधना या शिव उपासना, चंद स्थित होने पर किसी देवी की उपासना, मंगल स्थित होने पर हनुमानजी या कार्तिकेय की आराधना, बुध स्थित होने पर गणपति या विष्णु उपासना वृह स्थित होने पर शिव शंकर उपासना, शुक्र स्थित होने पर लक्ष्मी उपासना, शनि स्थित होने पर हनुमानजी एवं भैरव उपासना, राहु स्थित होने पर सरस्वती उपासना एवं केतु स्थित होने पर गणपति उपासना आपके लिए फलदायक रहती है।

अपनी राशि के अनुसार ही ईष्ट उपासना करने पर आपको सुख-शांति एवं समृद्धि अवश्य प्राप्त होती है। यदि आपकी राशि मेष या वृश्चिक है तो आपके इष्टदेव हनुमानजी होंगे। इसलिए आपको हनुमानजी की उपासना लाभदायक रहेगी। आपकी राशि वृषभ या तुला हो तो लक्ष्मीजी की, मिथुन या कन्या हो तो गणेशजी की, कर्क राशि हो तो किसी देवी की, सिंह राशि हो तो शंकर भगवान की उपासना, धनु या मीन राशि हो तो शिव उपासना, मकर या कुंभ राशि हो तो भैरव उपासना करनी चाहिए।

यदि आपकी जन्म पत्रिका में पंचम भव कोई ग्रह नहीं है तो आप देखें की पंचम भाव पर किस ग्रह की दृष्टि है। पंचमेय पर किसी ग्रह की दृष्टि है। इन दोनों दृष्टिकारक ग्रहों में से बलवान ग्रह के आधार पर ईष्ट का निर्णय करे। यदि पंच भाव एवं पंचमेय पर कई ग्रहों की दृष्टि है तो दोनों पर कौन सा ग्रह दृष्टि कर रहा है। उसमें से बलवान ग्रह कौन सा है, उसी के आधार पर अपना ईष्टदेव जाने।

यदि पंचम भाव एवं पंचमेय पर किसी ग्रह की दृष्टि नहीं है तो आप पंचम भाव एवं पंचमेय में से कौन सा बली हैं। यदि भाव बली हैं तो उसके तत्व के आधार पर एवं पंचमेय बली हो तो ग्रह के अनुसार ईष्ट निर्णय करे।

यदि आपके पास जन्म पत्रिका नहीं है तो आप जिस देव की सर्वाधिक पूजा अर्चना करने की चाहत रखते हैं। जिस देवी-देवता के मंदिर के सामने जाते ही आपका मन श्रद्धा से झुक जाता है। आपको लगता है कि अमुक देवी देवता की उपासना करने पर मुझे सुकुन मिलता है तो आपके ईष्टदेव वही हैं। आप चाहे तो इनकी पूजा नित्य प्रति करें आपको परिणाम भी उत्तम प्राप्त होगा।

आपके जो ईष्टदेव है उनकी विशेष पूजा साल में एक बार अवश्य करें। उनको पूजा पाठ में जितना संभव हो व्यवस्था करे। पूजा करते समय पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति भाव बनाए रखे।

आप अपने इष्टदेव की पूजा उपासना करते समय प्रतिदिन उनके विशेष स्तोत्र या चालीसा का पाठ अवश्य करे। यदि प्रतिदिन संभव न हो तो महीने में उनके लिए निर्धारित तिथि या वार विशेष के दिन इसका पाठ अवश्य करे। अपने इष्ट का यदि कोई प्रतीकात्मक यंत्र हो तो उसे भी आप अवश्य धारण करे।

–परिहार ज्योतिष अनुसंधान केन्द्र
पो. आमलारी वाया दांतराई, जिला-सिरोही (राजस्थान)

खोने का दर्द

उमा पाठक

गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि नश्वर देह के मरने पर भी आत्मा नहीं मरती। पर क्या यह कथन वास्तव में देहधारियों के काम आता है? व्यक्ति अपने प्रियजन को खोने के बाद जीवन का सामना करने की शक्ति खो बैठता है। धर्म, दर्शन, आत्मा और अमरत्व सब बातें निरर्थक लगने लगती हैं।

यह जानते हुए भी कि मरण जीवन का अंतिम कृत्य है, इस जाने-पहचाने जगत में अंजान लोक की ओर ले जानेवाली मृत्यु भयानक लगती है। मान भी लें कि आत्मा अमर है, पर उससे संबंध जोड़ पाना निग्रुण ब्रह्म की साधना के समान कठिन है। पीड़ित व्यक्ति को जीवन में आए दर्द से जुड़े प्रश्न परेशान करते हैं–यह दर्द जीवन में क्यों आया?

इससे कैसे उबरा जा सकता है? 'क्यों' का रहस्य कभी नहीं खुल पाता है। न ही इसका कोई तर्कपूर्ण जवाब होता है। पर कैसे इस स्थिति से निकला जाए, इसका उत्तर अवश्य है। इस दर्द से छुटकारा कभी नहीं मिल सकता, पर उससे लड़ने की ताकत जुटाई जा सकती है। किसी भी स्थिति से या हम हार सकते हैं या उसे हराने के उपाय सोच सकते हैं। जैसे तूफान में फंसा पक्षी पल भर को भी अपने पंख झुका ले तो टूट कर धरती पर आ गिरता है, किन्तु पंखों को ऊपर रखने से बच जाता है।

अध्यक्षीय

मनीष जैन

परिवार है जीवन की प्रयोगशाला

हमारे धर्म-ग्रंथ जीवन-मंत्रों से भरे परे हैं। प्रत्येक मंत्र दिशा-दर्शक है। उसे पढ़कर ऐसा अनुभव होता है, मानो जीवन का राज-मार्ग प्रशस्त हो गया। उस मार्ग पर चलना कठिन होता है, पर जो चलते हैं वे बड़े मधुर फल पाते हैं। कठोपनिषद् का एक मंत्र है-'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।' अर्थ इसका किया गया है–उठो, जागो और ऐसे श्रेष्ठजनों के पास जाओ, जो तुम्हारा परिचय परब्रह्म परमात्मा से करा सकें। इस अर्थ में तीन बातें निहित हैं। पहली, तुम जो निद्रा में बेसुधा पड़े हो, उसका त्याग करो और उठकर बैठ जाओ। दूसरी, आंखें खोल दो अर्थात अपने विवेक को जागृत करो। तीसरी, चलो और उन उत्तम कोटि के पुरुषों के पास जाओ, जो ईश्वर यानी जीवन के चरम लक्ष्य का बोध करा सकें।

'परिवार' एक ऐसा आश्रय स्थल है, हमारा ध्यान अच्छाइयों की ओर आकृष्ट होता है और उन अच्छाइयों को प्राप्त करने के लिए उद्योग करने को वहां प्रोत्साहन मिलता है, किन्तु इसे जीवन की किस दिशा में प्रयुक्त किया जाए, इससे के लिये मार्गदर्शन अपेक्षित है। ''सुखी परिवार अभियान'' गणि श्री राजेन्द्र विजय के प्रयत्नों की एक सुखद परिणति है। यह घर-आंगन में सूरज के आगमन का प्रतीक है। सूरज एक ऐसा भूमंडलीय नक्षत्र है जो संपूर्ण सृष्टि का संचालन करता है। आज जबकि परिवार नाम की संस्था का अस्तित्व धुंधला रहा है, परिवार बिखर रहे हैं, आपसी रिश्ते टूट रहे हैं, सामूहिक हितों की बजाय व्यक्तिगत हितों का बोलबाला है, घर-घर में तलाक, भ्रूणहत्या, दहेज हत्या, नशा पांव पसार रहा है तब ''सूरज'' यानी ''सुखी परिवार योजना'' का अवतरण सचमुच परिवार क्रांति का एक सुखद दौर एवं शुभ भविष्य की शुरुआत है।

सोए से उठने और उठकर चल पड़ने की प्रक्रिया का एक नाम है–सूरज का आंगन में अवतरण। जिस तरह सूरज आकाश में चढ़ता है और ज्यों-ज्यों वह ऊंचाइयां मापता है, घर-परिवार में व्यापकता और विशालता के साथ प्रकाश किरणों के पंख फैलाता है। वह अपने साथ हर सुबह मनुष्य के नाम नई सौगात लाता है–इच्छा शक्ति की, संकल्प शक्ति की, कर्म शक्ति की।

सघन अंधेरों की परतों को भेदकर जब सूरज आंगन में उतरता है तो प्रकृति का कण-कण प्राणवान हो उठता है। क्योंकि सूरज की अगवानी में जागती रात विकास की अनेक संभावनायें दे जाती हैं। यही क्षण हर परिवार और हर व्यक्ति के लिए अभ्युदय का होता है। सृजन से चेतना जागती है। सपने संकल्पों में ढलकर साध्य तक पहुंचने के लिए पुरुषार्थी प्रयत्नों में जुट जाते हैं। सुखी परिवार अभियान ऐसे ही सपनों को संकल्पों में ढाल कर साध्य तक पहुंचाने का एक उपक्रम है।

परिवार को सुखद बसेरा एवं धार्मिक जीवन की प्रयोगशाला बनाने का एक अन्य प्रेरक मंत्र है–'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है।' इसकी व्याख्या करते हुए गांधीजी ने लिखा है: 'अरे मुसाफिर, उठ! सवेरा हुआ। अब रात कहां है, जो तू सोता है?' इतना समझकर जो बैठ जाता है, उसने पढ़ा पर विचार नहीं किया, क्योंकि वह सवेरे के समय उठकर ही अपने को कृतार्थ मान लेता है। पर जो विचार करना चाहता है, वह तो अपने आप से पूछता है–मुसाफिर यानी कौन? सवेरा हुआ के मानी क्या हुए? रात गई यानी? सोना क्या है? यों सोचे तो रोज एक पंक्ति से अनेक अर्थ निकाल लें और समझें कि मुसाफिर यानी जीव-मात्र। जिसे ईश्वर पर आस्था है, उसके लिए सदा सवेरा ही है।

धर्म जीवन का हिस्सा है, जीवन से जुड़े अनगिनत संदर्भों में देखा जा सकता है कि व्यक्ति का नैसर्गिक गुणो में रहना धर्म है, धर्म मुखौटा नहीं, प्रदर्शन नहीं, प्रलोभन नहीं, प्रतिबद्धता नहीं और प्रतिक्रिया भी नहीं। धर्म उसी अभिव्यक्ति का नाम है जो सच में हम हैं। धर्म को जीवन से हटकर न देखा जा सकता है न जिया जा सकता है। वह वर्ण, जाति, संप्रदाय और पंथ सभी से मुक्त है। भले ही हमने उसे मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में बांट दिया, पर है यह एक और अखंड। धर्म कभी सिद्धांतों, क्रियाकांडों, रीति-रिवाजों, परंपराओं से बंधता नहीं है। इसीलिए एक आस्तिक जो धर्म को नहीं मानता वह भी जीवन के नैतिक मूल्यों को सम्मान देता है, अच्छाइयों के प्रति आस्था और बुराइयों के प्रति संघर्ष करने का साहस करता है। वह यह भी जानता है कि धर्म को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। धर्म तो सांस नीतियां और किये गये वायदों के प्रति जागरूक रखती है।

भगवान महावीर ने अप्रमत्तता के संदर्भ में जीवन का निचोड़ रखा-जो भी व्यक्ति अपना वर्तमान और भविष्य उज्ज्वल, श्रेष्ठ देखना-पाना चाहे वह जीए जाने वाले प्रत्येक क्षण के प्रति सावधान रहे, इसलिए 'समयं गोयम! मा पमायए' का बोधि स्वर गूंजा और सत्यान्वेषी साधक को शुद्ध साध्य तक पहुंचने के लिए शुद्ध साधन की जरूरत हुई।

बस, वही क्षण जीवन का सार्थक है जिसे हम पूरी जागरूकता के साथ जीते हैं और वही जागती आंखों का सच है जिसे पाना हमारा मकसद है। सच और संवेदना की संपत्ति ही किसी परिवार की अपनी होती है। इसी संवेदना और सच से ऊपजे अर्थ होते हैं जो एक परिवार का सृजन करते हैं। मूल्यों के गिरने और आस्थाओं के विखंडित होने से ऊपजी मानसिकता ने आदमी को निराशा के धुंधलकों में धकेला है। सुखी परिवार अभियान नयी प्रेरणा देती है जिससे व्यक्ति इन निराशा के धुंधलकों से बाहर निकलकर जीवन के क्षितिज पर पुरुषार्थ के नये सूरज उगा कर अपने सुखद संसार का सृजन करता है।

श्रद्धेय गणि राजेन्द्र विजयजी का 37वां जन्म दिवस 19 मई को आदिवासी अंचल में प्रयोजनात्मक ढंग से मनाया गया, तब उन्हीं के द्वारा प्रारंभ किए गए पांच सकार–सुख, समृद्धि, सेवा, संस्कार एवं स्वस्थ समाज के संकल्प के विविध कार्यक्रमों को गति देने का यह अभियान निश्चित ही परिवारों को सुदृढ़ बनाएगा। सुखी परिवार की समग्र परियोजना न केवल आध्यात्मिक उन्नयन का उपक्रम है बल्कि यह व्यक्ति की समृद्धि एवं भौतिक उन्नति की भी आयोजना है। आध्यात्मिक और भौतिक विकास की इस समन्वित भित्ति पर निर्मित्त होने वाला परिवार एक अलग और स्वतंत्र पहचान कायम करने में सक्षम होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। ■

INDIAN CHARITY & WELFARE EXCHANGE

The mission of ICWE is to achieve Global Excellence in philanthropic services and to dedicate ourselves for worldwide Donor-Beneficiary Exchange, keeping in the view the needs and interests of the society.

ICWE is committed to:-

- The society by making a sustainable difference in the life of the less privileged children, women, aged, disabled people and of those who are living in poverty & injustice.
- Works as an Exchange between donor and beneficiary to facilitate their objectives and to support them in identifying the potential donor or beneficiary and the opportunities that each side offers to the other side.
- Provide philanthropic advisory services to donors and NGOs to help them in their aims & objectives and to perform their work properly so that they can achieve their ultimate goal of serving the underprivileged sections of the society.
- Maintain a worldwide accessible data bank of NGOs, Donors and Beneficiaries to make this field more collaborative.

Advisory Services

ICWE with its highly qualified and focused team of Professionals provides specialized and valuable advisory services to NGOs, Trusts, Corporate and other philanthropic organizations on the following areas :

- Legal
- Financial
- Management
- Project
- Fund Raising
- Event Management

ICWE Care for All

ICWE is committed to serving various social causes. It launches various programs for the underprivileged sections of the society. Its key areas are:

- Children
- Women
- Aged People
- Disabled
- Education
- HIV

Register with us

Donor: ICWE provides a global platform to Donors to identify a cause that is appropriate for their support.

Beneficiary : ICWE provides financial assistance to Individual and Institutional beneficiaries. It also provides a platform for them to search and approach potential donor for their cause.

Please register on our website and explore the world of philanthropy.

Contact Us

Indian Charity & Welfare Exchange

A56/A First Floor, Lajpat Nagar II,
New Delhi - 110024 [India]

Phone : +91-11-41720778
Fax : +91-11-29847741
www.indiancharityexchange.com
info@indiancharityexchange.com

Delhi Postal Regd No. DL(E)-20/5333/2010-2012
Date of Posting: 5 - 6 Every month

RNI No. DELBIL/2010/32807
June 2011

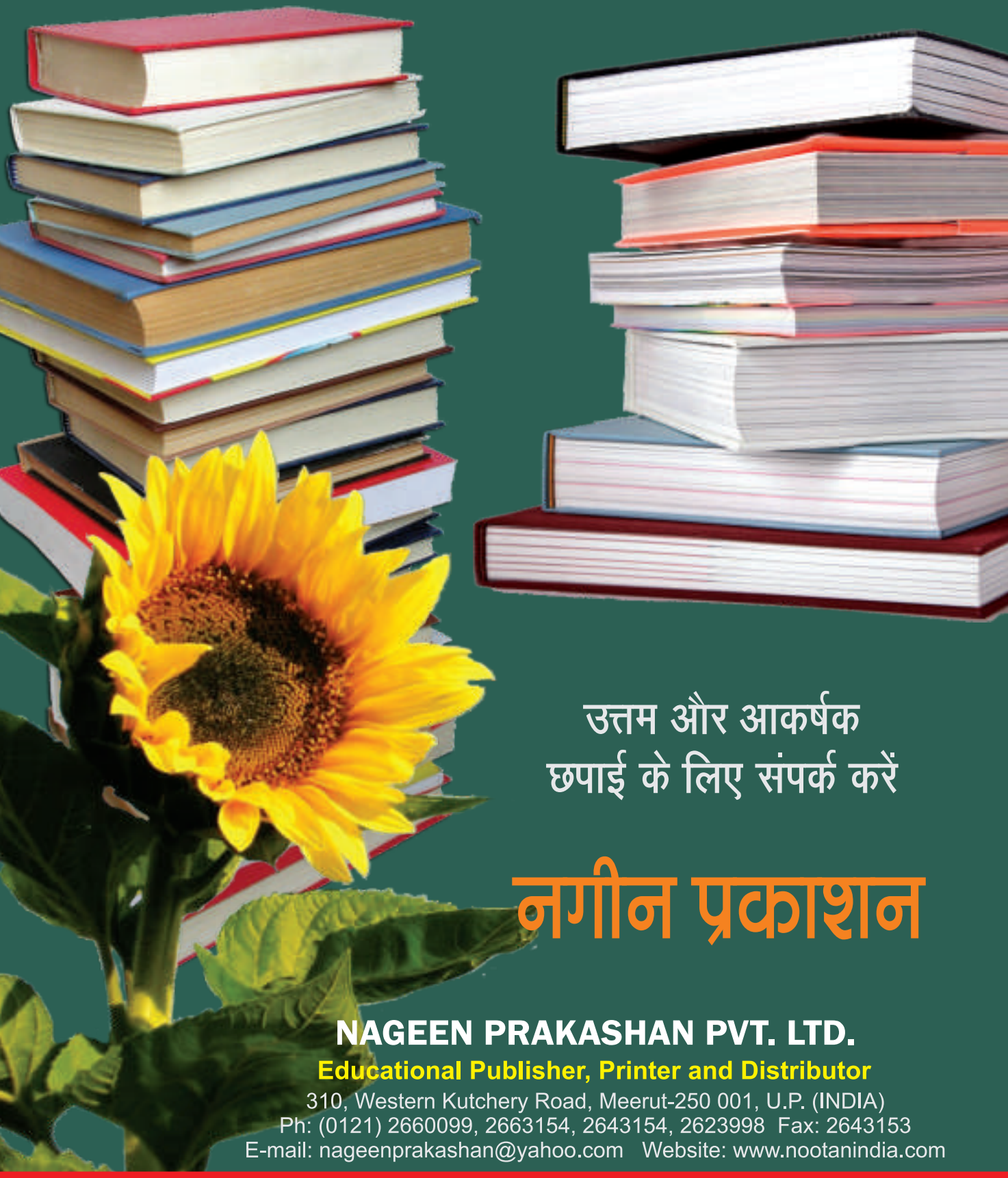

उत्तम और आकर्षक
छपाई के लिए संपर्क करें

नगीन प्रकाशन

NAGEEN PRAKASHAN PVT. LTD.

Educational Publisher, Printer and Distributor

310, Western Kutchery Road, Meerut-250 001, U.P. (INDIA)
Ph: (0121) 2660099, 2663154, 2643154, 2623998 Fax: 2643153
E-mail: nageenprakashan@yahoo.com Website: www.nootanindia.com

If undelivered please return to:
Editor, Samradha Sukhi Pariwar, E-253, Saraswati Kunj Appartment, 25 I. P. Extension, Patparganj, Delhi-110092